ज्ञानपीठ-लोकोदय-ग्रंथ-माला, हिन्दी ग्रथांक—२४

संघर्षके बाद

श्री विष्णु प्रभाकर

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

१५८
ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला सम्पादक और निये
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, एम० ए०

प्रथम संस्करण
नवम्बर १९५३
मूल्य तीन रुपया

प्रकाशक
मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ काशी
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस

मुद्रक
जे० के० शर्मा
लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद

स्व० मुंशी प्रेमचन्द

को

जिनसे मैं कभी नहीं मिला

पर

जिनके शब्द मेरे पथकी ज्योति बने

विषय-सूची

मेरी कैफ़ियत

मैने कहानी कैसे लिखनी शुरू की—यह प्रश्न अनेक बार पूछा गया। कई बार उत्तर भी दिया, जो छापेमे आया, पर सच पूछो तो वे सब उत्तर गलत थे। मै आज भी नही जानता कि मैने कहानी लिखनी कैसे शुरू की। यूँ तो दिमागसे सोचा, कलममे स्याही भरी और कागज़पर लिखा, लेकिन प्रश्नका उत्तर इस तथ्यमे नही आता।

बचपनसे कुछ अपनेमे सिमटा-सिमटा रहनेका और पढनेका स्वभाव था। केवल किताब पढनेका नही, आदमीको पढनेका भी। फिर व्यथा या जिसे त्रास कहते है, उसे भी पाससे देखा और भुगता। वैसे स्नेह भी आस-पास मँडराता रहा। बहुत कम आयुमे उत्तरदायित्व भी सिरपर आ गया। भौतिक ससारमे आर्यसमाजका गहरा सम्पर्क मिला। वातावरण कुछ इस तरहका था कि एक दिन मैने कहानी लिख डाली। वह छपी और नष्ट हो गई। शायद यह नवम्बर १९३१की बात है। वह कहानी आज नही है, पर याद है कि कलाकी दृष्टिसे अपरिपक्व होनेपर भी उसमे भावोकी सरलता थी, और थी भाषाकी प्रौढता। एक जुआरी पतिके पत्नीकी करुणा उसमे थी। उसपर आर्यसमाजका स्पष्ट प्रभाव था। इस सग्रहकी कई और कहानियोपर वह पाठकोको मिलेगा।

लिखा मैने उससे पहले भी। आर्यसमाजमे जो कुछ बोलता, उसे लिख डालता, गद्य काव्य भी लिखा और कविता भी, पर वे अब सब नाम-शेष है। लेख एकाध पडा हो सकता है। पर यहाँ तो कहानीकी बात है। इस पहली कहानीका नाम 'दिवालीके दिन' था और वह 'हिन्दी मिलाप' लाहौरके 'दिवाली अक'मे छपी थी। फिर भी एक-दो कहानी लिखी पर समय कम था, था ही नही। सवेरे चार बजे उठता, छ-सात तक किसी

न किसी परीक्षाकी तैयारी करता। आठ वजे दफ्तर जाता और आठके आसपास ही लौटता। कभी-कभी अगले दिनके आठ वज जाते। फिर ड्रैमेटिक क्लवमे भी जाता था। राधेश्यामके नाटकोमे राजा दशरथ और भगवान् कृष्णसे लेकर 'एक वेद वेदनि वेटा वेटी साथ'की दलील देनेवाले विदूषकों तकका अभिनय किया है। एक कम्पनी अपनी भी खोली थी, जिसका मै एक्टर ही नही, सिकत्तर भी था और व्याख्यान केवल आर्यसमाजमे ही नही देने पडते थे, गुरुद्वारा, मस्जिद, जैन-मन्दिर, हिन्दी-सभाये, सरकारी मीटिगे सभीके रगमच मेरे लिए खुले थे। इसपर भी नवम्बर १९३१से १९३४ तक पॉच-दस कहानियाॅ लिखी होगी। एक वार श्री महावीरप्रसाद द्विवेदीको एक कहानी भेजी, पर वे वहुत बूढे हो चुके थे, कुछ सलाह न दे सके। पर जिस तत्परतासे, स्नेहसे, उन्होने उत्तर दिया, उससे मुझे बडी प्रेरणा मिली। प्रेमचन्दजीको भी कई कहानियाँ भेजी। उन्होने उन्हे छापनेकी वात कही, पर कुछ सुधारकर। उन्होने मुझे कुछ हिदायते दी। एक लेख मेरा 'जागरण'मे छापा भी, पर जीतेजी कहानी शायद कोई नही छाप सके। हाॅ, उनकी मृत्युके वाद तो हसमे मैने नियमसे लिखा। कहूँ कि मै 'हस'के द्वारा इस क्षेत्रमे आया पर वह अभी आगेकी वात है। प्रेमचन्दजीने मेरी कहानियोंके प्लाटको पसन्द किया और वडी आत्मीयतासे मुझे लिखा कि कहानियाॅ वहुत लिखी जाती है, पर अच्छी कहानियाॅ उनमे वहुत ही कम होती है।

शायद सन् १९३४की वात है। लाहौरसे एक मासिक पत्र निकला था। 'अलकार' उसका नाम था। आचार्य देवशर्मा (अव पॉडेचरी आश्रमके स्वामी अभयदेव) उसके मुख्य सम्पादक थे। कहानीके सम्पादक थे श्री चन्द्रगुप्त विद्यालकार। मेरे पास जो ५-६ कहानियाॅ पडी थी वे सवकी सव उठाकर उन्हे भेज दी। सलाह भी मॉगी। उन्होने उत्तर दिया कि कहानियाँ अच्छी है। अलकारमे छापेगे। सलाह उन्होने यह दी कि आजकी कहानियाॅ मनोवैज्ञानिक होती है। मुझे इस वातका ध्यान रखना चाहिए।

मै मानता हूँ कि कहानी-लेखकके रूपमे मेरा जीवन सन् १९३४से ही आरम्भ होता है। चन्द्रगुप्तजीने मेरी दो कहानियाँ छापी। फिर वह पत्र बन्द हो गया और उसके साथ मेरी शेष कहानियाँ भी नाम-शेष हो गई। इस सग्रहकी 'स्नेह' कहानी उसी 'अलकार'मे छपी थी। इसके वाद भी लिखनेके क्रममे कोई गति नही आई। हाँ, विश्वास अवश्य आया। पर सन् १९३५ तक मेरे जीवनमे एक परिवर्त्तन आ चुका था। भयकर शारीरिक और मानसिक श्रमने मेरे स्वास्थ्यपर चोट की और सन् १९३६मे मेरी आँतोमे जो खरावी आई, वह आजतक नही मिटी। सन् १९३६ और कई कारणोसे भी मुझे याद रहेगा। तवतक मै परीक्षाओके आलजाल, भाषणोके मोह और ड्रैमेटिक क्लबोके चक्रव्यूहसे मुक्त हो चुका था। सिनेमाने रगमचको नष्ट कर दिया था और स्वास्थ्यने परीक्षाओको। इधर सात वर्षकी सरकारी क्लर्कीने (जिसे राष्ट्रिय विचारोके कारण मैने कभी नही चाहा था) मेरे भीतर भयकर मानसिक सघर्ष पैदा कर दिया और राष्ट्रिय आन्दोलनोने आर्यसमाजकी कट्टरताको भी धो दिया। इन सब कारणोसे मेरा ध्यान कहानी लिखनेपर अधिक जाने लगा। जो धारा अबतक अटक अटककर वह रही थी, उसे मानो मार्ग मिल गया।

'सघर्षके वाद' मैने सन् १९३६मे ही लिखी। उसे मैने माधुरीको भेजा। लौटती डाकसे स्वीकृतिका पत्र आया। वह २१ जूनकी बात है। याद इसलिए है कि यह मेरी जन्मतिथि है। याद है मुझे उस दिन बहुत खुशी हुई थी, पर मैने उस कहानीको 'माधुरी'मे छपे कभी नही देखा। अगले वर्ष सन् १९३७मे वह 'हस'मे छपी। यहीसे मेरे सम्वन्ध 'हस'से और श्री जैनेन्द्रकुमारसे हुए। जैनेन्द्रजीसे कैसे मिला, यह स्वय एक कहानी है। शायद इसी कहानीके लिए उन्होने लिखा था कि कहानी सुन्दर है, पर मुझे 'भावनाकी मुलायमियत कुछ कम करनी चाहिए।' इससे मेरा उत्साह कितना बढा आज कैसे बताऊँ। और कहानियाँ भेजी, मिलने भी गया। जैनेन्द्रके मुखसे और लेखनीसे सुनने और पढनेको मिला कि

मैं शानदार कहानियाँ लिखता हूँ, इतनी कि उन्हे भी ईर्ष्या होती है। जैनेन्द्र ऐसा कहे और एक नौसिखिया फूल न उठे, आश्चर्यकी बात है। कोई वीतराग ही ऐसा कर सकता है, पर मैं वीतराग नही था। आजतक नही बन सका। इसलिए उस दिन मैंने मान लिया था कि अच्छा या बुरा 'मैं कहानी लेखक हूँ'। आजतक इस मान्यताको बदलनेका कारण मुझे नही मिला। भले ही पाठक इसे गर्वोक्ति कह ले पर सच यही है। आज मुझे लोग नाटककारके रूपमे अधिक जानते है। एक भाईने मुझे असफल कहानीकार तथा सफल नाटककार कहा। इधर दो-तीन वर्षोमे हिन्दी कहानीपर जो भी पुस्तके निकली या पत्रोके विशेषाक प्रकाशित हुए उनमे लगभग सभीमेसे मेरा नाम गायब है। पर पूरी विनम्रताके साथ मेरी मान्यता यही है कि मैं जैसा भी हूँ, अच्छा या बुरा; छोटा या बडा, सबसे पहले कहानीकार हूँ। नाटककार तो मैं अभी अपनेको कह भी नही सकता, सफल नाटककार होनेकी बात ही क्या है।

बहरहाल मेरे कहानीकार होनेकी कहानी सक्षेपमे इतनी ही है। मैं चाहता था कि सन् १९३६से सन् १९४० तककी कुछ कहानियाँ इस सग्रहमे दे पाता। दे नही पाया। उसके कई कारण है, एक तो उनमे-से कुछ कहानियाँ 'आदि और अन्त' (१९४४) रहमानका बेटा, (१९४७) तथा जिन्दगीके थपेडे (१९५२) मेरे इन तीन सग्रहोमे छप चुकी है। कुछ खो गई। ६ जून १९४०को पजाबमे जो सामूहिक तलाशियाँ हुई, उस दिन, सरकारी नौकर होते हुए भी, मैं उन सौभाग्यशाली व्यक्तियोमे था, जो उस नाटकके पात्र बने। क्या हुआ वह इस कैफियतके दायरेसे बाहर है पर एक बात ऐसी थी जिसने मेरे कहानीकारको नई दिशा दी। अर्थात् मेरा मन अब उस नौकरीसे ऊब गया। यद्यपि पजाब सरकारने इन सारी बातोके बावजूद मुझसे कुछ नही पूछा, पर मेरा मन विद्रोह कर बैठा। उधर मध्य-वर्गके मेरे जैसे प्राणियोकी आर्थिक स्थिति निम्न थी। जिम्मे-दारियाँ ऐसी कि फैंके न फिके। ऊपरसे नई शादी, एक बच्चा और बढ

गया। परिणाम यह हुआ कि उस तीव्र सघर्पने मेरी पुरानी बीमारीको उभार दिया और लगभग चार वर्ष मै इसी बीमारी और विद्रोहके चक्रव्यूहमे फँसा रहा। स्वास्थ्य गिरता गया, पर अन्तमे जीत विद्रोहकी हुई और सन् १९४८मे मैने १५ वर्षकी सरकारी नौकरीसे त्यागपत्र दे दिया। मै स्वीकार करूँगा कि यद्यपि मित्रोने इस बातका तीव्र विरोध किया था, पर मेरे परिवारवालोने (मेरे भाइयोने और मेरी पत्नीने) मेरा पूर्ण समर्थन किया। मुझे बल दिया। यह कम सौभाग्य नही है। अब मै सर्वथा मुक्त होकर लिखने लगा। अनजाने ही मैने जो बन्धन स्वीकार कर लिये थे, वे टूट गये। मै समझता हूँ, मेरी कलापर इस घटनाका प्रभाव पडा। पडना अनिवार्य था।

मेरी कहानियोमे सामाजिक विद्रोह शुरूसे रहा है, पर आरम्भमे वह आर्यसमाजके सुधारवादसे प्रभावित था, अब उसका स्वर विशुद्ध मानवताके स्तरपर आ गया। गलतफहमी न हो, मै इस बातको स्पष्ट कर दूँ, अर्थात् अब उस स्वरमे 'यहीतक' 'इतना ही, आगे नही' के बन्धन नही रहे। राजनीतिके क्षेत्रमे भी मैने अपनेको किसी वादमे नही बाँधा। वादको मै फाँसी मानता हूँ। यूँ मेरे विचार है, बिना विचारोके मै आगे बढ ही नही सकता। मै मानता हूँ कि मानव मूलमे बर्बर होकर भी अनिवार्य रूपसे बुरा नही है। उसकी बर्बरता निश्चयसे रूपान्तरित हो सकती है। शाश्वत गुणोकी लम्बी सूचीमे मेरा विश्वास नही है पर एक, केवल एक शाश्वत गुण मै अवश्य मानता हूँ। वह है किसीके लिए कुछ करनेकी भावना। शेप सब नैतिकता सापेक्ष है। यह स्वर इन कहानियोमे बराबर मिलेगा। सोई हुई मानवताको ही मै ढूँढता रहता हूँ। हमने प्रकृतिको और विज्ञानको अपना दास बना लिया है। वह बुरा नही है। बुरा यही है कि मनुष्य अपना दास बन गया है। दास बनता है बर्बरता जागती है, स्वामी बनता है मानवता उमडती है। आजका मानव बर्बर है। उसी बर्बरताका रूपान्तर आजके युगकी आवश्यकता है। उस मानवताको खण्ड-खण्ड करनेवाले

जो भी स्वर है अधिनायकवाद, साम्राज्यवाद, पूँजीवाद, प्रान्तीयता, जातीयता, साम्प्रदायिकता और रगभेद आदि आदि सबका मै विरोधी हूँ।

मुझे कुछ लोगोने प्रगतिवादी कहा, कुछने उदार सामन्तवादी, कुछने गान्धीवादी, पर मै कुछ भी नही हूँ। मै तो केवल, वादी हूँ तो, विष्णुवादी हूँ। इसे अहम् कह ले, कुछ कह ले, पर मेरा नम्र निवेदन यही है कि यह मात्र 'विश्वास' है। यह 'विश्वास' न होता तो मै लिखता कैसे? मेरे व्यतीतमे यह विश्वास था, मेरे भविष्यमे यही विश्वास बना रहेगा—ऐसा मै मानता और चाहता हूँ।

६ जून सन् १९४०की तलाशीमे एक और साधारण-सी बात हो गई थी। उस गडबडमे कुछ साहित्य तो खो ही गया, उसका लेखा जोखा जो मेरे पास था वह भी बिल्कुल नष्ट हो गया। रहा-सहा मैने पिछले साल नष्ट कर दिया। सभी रचनाओकी जो पुरानी पाण्डुलिपियाँ पडी थी, वे फाड फेंकी। आजकल आदमीको रहनेको जगह नही मिलती, ऐसी चीजे कहाँ रखे? फिर यह निरा मोह है। मोहसे जितनी मुक्ति मिले, उतनी अच्छी। यह स्वर भी इन कहानियोमे मिलेगा, भले ही वह तीव्र न हो।

पौराणिक और ऐतिहासिक कहानियाँ मैने नही लिखी। वर्त्तमान इतना है कि व्यतीतकी ओर दृष्टि नही जाती। फिर भी एक कहानी इसमे है ही। वह वस्तुत लिखवाई गई थी। मैने स्वत नही लिखी, पर विषय मेरे मनके अनुरूप होनेसे वह मेरी बन गई। इसी तरह तत्कालीन आन्दोलनोको जब-जब मैने अपनी कहानियोमे उतारा, तब-तब उसका एक मात्र उद्देश्य मानवताकी खोज ही रहा है। उनके लिए या उनके विरुद्ध प्रचार करना नही।

मुझे कुछ लोग आदर्शवादी भी कहते है। जैसा कह आया हूँ 'वादी' मै नही हूँ। हाँ, आदर्श मुझे प्रिय है, पर आकाशमे उडनेवाला नही, धरतीका वासी! यथार्थसे मै कभी दूर नही भागता। मानवका मनोवैज्ञानिक अध्ययन करनेवाला भाग ही नही सकता। मै अपने दोषोकी कैफियत नही दे रहा हूँ। कमजोरियाँ मुझमे बहुत है। मै तो अपने दृष्टिकोणकी

कैफियत दे रहा हूँ। इन्ही २१ कहानियोमे १२ तो विल्कुल सच्ची या सच्ची घटनाओपर आधारित हैं। एक ऐतिहासिक अपवाद है। शेष ८ सामाजिक और मनोवैज्ञानिक सत्यपर आधारित है। उनके व्यक्ति-वाचक पात्र मुझे नही मिले, पर जातिवाचक अवश्य मिले। इसलिए मेरे समीप वे और भी सत्य हैं।

शैली और भाषाकी वात भी कहता चलूँ। मैंने किसी एक ढगपर कहानियाँ नही लिखी। रूप भी कई लिये। शायद सव इस सग्रहमे नही आ सके। वह मेरा उद्देश्य नही था। फिर भी इनमे काफी विभिन्नता मिलेगी। डायन, रायवहादुरकी मौत, वच्चा माँका था, माँ-वाप, ताँगेवाला, स्नेह आदि सवकी शैली अलग-अलग है। भाषाकी दृष्टिसे भी विभिन्नता इनमे हैं। जीवन-दीप और अधूरी कहानीकी भाषामे काफी अन्तर है। इस वारेमे प्रयोग करना मुझे अच्छा लगता है। वैसे अराजकता इनमे नही मिलेगी। मेरा अपनापन सवमे एक जैसा है।

जहाँतक याद पडता है जजका फैसला, अगम अथाह, सम्वल, जीवन-दीप, रायवहादुरकी मौत और डायन दिल्लीकी सुपरिचित साहित्यिक सस्था 'शनिवार समाज'मे पढी जा चुकी है और साधारणत उन्हे पसन्द भी किया गया हैं। जजका फैसला, जीवन-दीप, धरोहर, सघर्पके वाद, गृहस्ती, ये कहानियाँ रूपान्तरित होकर आकाशवाणीके कई केन्द्रोसे प्रसारित हो चुकी है। गृहस्ती, जजका फैसला, और सघर्षके वाद तो कई वार प्रसारित हुई है। 'गृहस्ती'पर 'विश्वकहानी प्रतियोगिता' के अन्तर्गत होनेवाली 'हिन्दी कहानी प्रतियोगिता'मे चौथा इनाम मिला था। यह लगभग सभी भारतीय भाषाओमे अनुदित हो चुकी है। इसका रेडियो रूपान्तर "और वह जा न सकी" कन्नड और मराठीमें अनुदित होकर मैसूर तथा नागपुरसे प्रसारित हो चुका है। 'अगम अथाह' आकाशवाणीके दिल्ली केन्द्रसे कहानीके रूपमे ही प्रसारित हुई थी। शेप कहानियोकी कहाँ-कहाँ और क्या चर्चा हुई, वह यहाँ असगत है।

पाठक उन्हे पढे और समझे । जो उन्हे अच्छा न लगे, वह बताये ।

मैंने अबतक २००से अधिक कहानियाँ लिखी है। पुस्तक रूपमे कुल ७० भी नही आ सकी। कुछके तो मुझे नाम भी याद नही रहे। ६०-७० और बेशक मेरे पास हो सकती हे। चाहता था दो चार और इस सग्रहमें आ पाती, पर हिन्दीमे कहानियाँ लिखी जाती है, बिकती नही, इस डरसे सग्रहको और स्थूलकाय बनाना उचित नही माना गया। कुछ भी हो, मै जो हूँ इन कहानियोमे काफी ईमानदारीसे उभर आया हूँ।

तो यह सक्षेपमे मेरी और मेरी कहानियोकी कथा है। मेरा 'मैं' इस कैफियतमे बहुत उभर आया है। मुझे स्वय अखर रहा है, पर अपने दिलकी बात साफ-साफ कहनेका यही रास्ता मेरी कलमको सूझा। मुझे विश्वास है कि पाठक इस दम्भको नजरअन्दाज़ कर देगे।

धन्यवाद एक शिष्टाचार है। आत्मीयता उसमे कम रह गई है, पर जिन व्यक्तियोकी इस सग्रहके पीछे प्रेरणा है, उनकी याद न करना भी आत्मीयता नही है। इन कहानियोके चुननेका काम मेरे बडे भाई श्रीब्रह्मानन्द, मेरे मित्र श्रीकन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' तथा श्रीमती रमारानी जैनने किया। मै श्रीमती रमारानी जैनसे परिचित नही हूँ, पर उनकी चुनाव-दृष्टिने मुझे प्रभावित किया। उनका विशेष रूपसे आभार मानता हूँ। 'भारतीय ज्ञानपीठ' तो प्रकाशक है ही। जो प्रकाश दे, उसे कौन धन्यवाद न देगा ?

अन्तमे जो इन कहानियोकी रचनाके पीछे प्रेरक शक्तियाँ रही है, उन्हे मै अपना विनम्र और मूक प्रणाम निवेदन करता हूँ। मेरे साहित्यकी 'ब्रह्मा-विष्णु' वे ही है। वे ही 'सत्य' है, मै तो मात्र 'वास्तविकता' हूँ।

३३४६, पीपल महादेव, दिल्ली
१५-५-५३

—विष्णु प्रभाकर

मैं ज़िन्दा रहूँगा

दावत कभीकी समाप्त हो चुकी थी, मेहमान चले गये थे और चॉद निकल आया था। प्राणने मुक्त हास्य वखेरते हुए राजकी ओर देखा। उसको प्रसन्न करनेके लिए वह इसीप्रकारके प्रयत्न किया करता था। उसीके लिए वह मसूरी आया था। राजकी दृष्टि तव दूर पहाडोके बीच, नीचे जानेवाले मार्गपर अटकी थी। हल्की चॉदनीमे वह धुँधला बल खाता मार्ग अतीतकी धुँधली रेखाओको और भी धुँधला कर रहा था। सच तो यह है कि तब वह भूत और भविष्यमे उलझी अपनेमे खोई हुई थी। प्राणके मुक्त हास्यसे वह कुछ चौकी। दृष्टि उठाई। न जाने उसमे क्या था, प्राण कॉप उठा, बोला, 'तुम्हारी तवीयत तो ठीक है?'

राजने उस प्रश्नको अनसुना करके धीरेसे कहा, 'आपके दाहिनी ओर जो युवक वैठा था, उसको आप अच्छी तरह जानते हैं?'

'किसको, वह जो नीला कोट पहने था?'

'हॉ, वही।'

'वह किशनके पास ठहरा हुआ है। किशनकी पत्नी नीचे गई थी, इसीलिए मैंने उसे भी यहॉ आनेको कह दिया था। क्यो, क्या तुम उसे जानती हो?'

'नही, नही, मैं वैसे ही पूछ रही थी।'

'मैं समझ गया। वह दिलीपको वहुत प्यार कर रहा था। कुछ लोग बच्चोसे वहुत प्रेम करते है।'

'हॉ, पर उसका प्रेम 'वहुत'से कुछ अधिक था।'

'क्या मतलब?'

गई और अपने स्थानपर बैठकर, पहलेकी भाति उस बलखाते हुए मार्ग को देखने लगी। नीचे कुलियोका स्वर बन्द हो गया था। ऊपर बादलोने सब कुछ अपनी छायामे समेट लिया था। चन्द्रमाका प्रकाश भी उसमे इस तरह घुल-मिल गया था कि उनकी भिन्नता रहस्यमय हो उठी थी। राजको लगा, बादलोकी वह धुध उसके अन्दर भी प्रवेश कर चुकी है और उसकी शान्तिको लील गई है। सहसा उसकी आँखे भर आई और वह एक झटकेके साथ कुरसीपर लुढककर फूट-फूटकर रोने लगी। प्राण सब कुछ देख रहा था। वह न सकपकाया, न क्रुद्ध हुआ। उसीतरह खडा हुआ उस फूटते आवेगको देखता रहा। जब राजके उठते हुए निश्वास कम हुए और उसने उठकर आँखे पोछ डाली, तब उसने कहा, 'दिलका बोझ उतर गया? आओ तनिक घूम आवे।'

राजने भीगी दृष्टिसे उसे देखा। एक क्षण ऐसी ही देखती रही। फिर बोली, 'प्राण, मै जाना चाहती हूँ।'

'कहाँ?'

'कही भी।'

प्राण बोला, 'दुनियाको जानती हो। क्षणभर पहले यहाँ सब कुछ स्पष्ट था, पर अब नही है, सब कुछ बादलोकी धुन्धमे खो गया है।'

'मै भी इस धुन्धमें खो जाना चाहती हूँ।'

प्राणने दोनो हाथ हवामे हिलाये और गम्भीर होकर कहा, 'तुम्हारी इच्छा। तुम्हे किसीने बाँधा नही है, जा सकती हो।'

राज उठी नही। उसीतरह-बैठी रही और सोचती रही। रात आकर चली गई, उसका सोचना कम नही हुआ, बल्कि और भी गहरा हो उठा। उसने दिनभर दिलीपको अपनेसे अलग नही किया। स्वयं ले जाकर मालपर झूलेमे झुला लाई। स्वय घुमाने ले गई और फिर खिला-पिलाकर सुलाया भी स्वयं। बहुत देर तक लोरी सुनाई, थपथपाया, सहलाया। वह सो गया, तो रोई और रोते-रोते बाहर बरामदेमे जाकर

और फिर मुडकर राजसे, जो बुत बनी बैठी थी, कहा, 'अरे भई, चाय-वाय तो देखो।'

मित्र एकदम बोले, 'नही, नही। चायके लिए कष्ट न करे। इस वक्त तो एक बहुत आवश्यक कामसे आये है।'

प्राण बोला, 'कहिये।'

मित्र कुछ झिझके। प्राणने कहा, 'शायद एकान्त चाहिये।'

'जी।'

'आइये उधर बैठेगे।'

वह उठा और कोनेमे पडी हुई एक कुरसीपर जा बैठा। मित्र भी पासकी दूसरी कुर्सीपर बैठ गये। एक क्षण रुककर बोले, 'क्षमा कीजिये, आपसे एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ। है तो वह बेहूदा ही।'

'कोई बात नही', प्राण मुस्कराया, 'प्रश्न पूछना कभी बेहूदा नही होता।'

मित्रने एकदम सकपकाकर पूछा, 'दिलीप आपका लडका है?'

प्राणका हृदय धक-धक कर उठा। ओह, यह बात थी। उसने अपनेको सँभाला और निश्चित स्वरमें कहा, 'जी हाँ! आज तो वह मेरा ही है।'

'आज तो?'

'जी हाँ, वह सदा मेरा नही था।'

'सच?'

'जी हाँ! काफलेके साथ लौटते हुए राजने उसे पाया था।'

'क्या', मित्र हर्ष और अचरजसे काँप उठे, 'कहाँ पाया था?'

'लाहौरके पास एक ट्रेनमें।'

'प्राण बाबू, प्राण बाबू! आप नही जानते यह बच्चा मेरी बहनका है। मै उसे देखते ही पहचान गया था। ओह प्राण बाबू! आप नही जानते, उनकी क्या हालत हुई'—और उछलकर उसने पुकारा, 'भाई साहब, भाई साहब! रमेश मिल गया।'

और फिर प्राणको देखकर कहा, 'आप प्रमाण चाहते है ? मेरे पास उसके फोटो है। यह देखिये।'

और उसने जेवसे फोटोपर फोटो निकालकर सकपकाये हुए प्राणको चकित कर दिया। क्षण भरमे वहॉका दृश्य पलट गया। रमेशके माता-पिता पागल हो उठे। मॉने तडपकर कहा, 'कहॉ है ! रमेश कहाँ है ?'

राजने कुछ नही देखा। वह शीघ्रतासे अन्दर गई और दिलीपको छातीसे चिपकाकर फफक उठी। दूसरे ही क्षण वे सब उसके चारो ओर इकट्ठे हो गये ! वे सब उद्विग्न थे, पर प्राण अब भी शान्त था। उसने धीरेसे राजसे कहा, 'राज, दिलीपकी मॉ आ गई है।' 'उसकी मॉ'—राजने फफकते हुए कहा, 'तुम सब चले जाओ। तुम यहॉ क्यो आये ? दिलीप मेरा है। मै उसकी मॉ हूँ।'

दिलीप (रमेश)की मॉ रोती हुई बोली, 'सचमुच ! मॉ तुम्ही हो। तुमने उसे पुनर्जन्म दिया है।'

सुनकर राज कॉप उठी। उसने दृष्टि उठाकर पहली बार उस मॉको देखा और देखती रह गई। तबतक दिलीप जाग चुका था और उस चिल्ल-पौमे घबराकर, किसी भी शर्तपर, राजकी गोदसे उतरनेको तैयार नही था। वह नवागन्तुकोको देखता और चीख पडता।

साल भर पहले जब राजने उसे पाया था, तब वह पूरे वर्षका भी नही था। उससमय सब लोग प्राणोके भयसे भाग रहे थे। मनुष्य मनुष्य-का रक्त उलीचनेमे होड ले रहा था। नारीका सम्मान और शिशुका शैशव सब पराभूत हो चुके थे। मनुष्यका मनुष्यत्व ही नष्ट हो चुका था। भागते मनुष्योपर राहके मनुष्य टूट पडते और लाशोका ढेर लगा देते; रक्त बहता और उसके साथ ही बह जाती मानवता। ऐसी ही एक ट्रेनमे राज भी थी। हमला होनेपर जब वह सज्ञा-हीनसी अज्ञात दिशाकी ओर भागी, तो एक बर्थके नीचेसे अपने सामानके भुलावेमे वह जो कुछ उठाकर ले गई, वही बादमे दिलीप बन गया। यह एक अद्भुत बात

थी। अपनी अन्तिम सम्पत्ति खोकर उसने एक शिशुको पाया, जो उस रक्त-वर्षाके बीच बेखबर सोया हुआ था। उसने कैम्पमे आकर जब उस बालकको देखा तो अनायास ही उसके मुँहसे निकला—'मेरे पति और मेरे दोनो बच्चोको मुझसे छीनकर आपने यह कैसा दान दिया है मेरे प्रभु !' लेकिन तब अधिक सोचनेका अवसर नही था। वह भारतकी ओर दौडी। मार्गमे वे अवसर आये, जब उसे अपने और उस बच्चेके बीच किसी एकको चुनना था, पर हर बार वह प्राणोपर खेलकर उसे बचा लेनेमे सफल हुई। मौत भी जिस बालकको उससे छीननेमे असफल रही, वही अब कुछ क्षणोमे उससे अलग हो जायेगा, क्योकि वह उसका नही था, क्योकि वह उसकी माँ नही थी। "नही, नही",—"दिलीप उसका है।" और वह फफक-फफककर रोने लगी। प्राणने और भी पास आकर धीरेसे शान्त स्वरमे कहा, 'राज ! माँ बननेसे भी एक बडा सौभाग्य होता है और वह है किसीके मातृत्वकी रक्षा।'

'नही, नही',—वह उसीतरह बोली, 'मै वह सौभाग्य नही चाहती'।

'सौभाग्य तुम्हारे न चाहनेसे वापस नही लौट सकता राज, पर हाँ ! तुम चाहो तो सौभाग्यको दुर्भाग्यमे पलट सकती हो।'

राज सहसा प्राणकी ओर देखकर बोली—'तुम कहते हो मै इसे दे दूँ ?'

'मै कुछ नही कहता। वह उन्हीका है। तुम उनका खोया लाल उन्हे सौप रही हो इस कर्त्तव्यमे जो सुख है, उससे बडा सोभाग्य और क्या होगा ? उस सौभाग्यको क्षणिक कायरताके वश होकर ठुकराओ नही राज !'

राजने एक बार और प्राणकी ओर देखा, फिर धीरे-धीरे अपने हाथ आगे बढाये और दिलीपको उसकी माँकी गोदीमे दे दिया। उसके हाथ काँप रहे थे, ओठ काँप रहे थे। जैसे ही दिलीपको उसकी माँने छातीसे

चिपकाया, राजने रोते हुए चिल्लाकर कहा, 'जाओ ! तुम सब चले जाओ, अभी इसी वक्त।'

प्राणने कोई प्रतिवाद नही किया, बल्कि जीनेतक उनको छोडने आया। उन लोगोने बहुत कुछ कहना चाहा, पर उसने कुछ नही सुना। बोला, 'मुझे विश्वास है, बच्चा आपका है। वह आपको मिल गया। आपका-सा सौभाग्य सबको प्राप्त हो, लेकिन मेरी एक प्रार्थना है।'

'जो कहिये। हमे आपकी हर बात स्वीकार है।'

प्राणने विना सुने कहा, 'कृपा कर अब आप लोग इधर न आये।'

वे चौके, 'क्या?'

'जी, आपकी बडी कृपा होगी।'

'पर सुनिये तो ।'

प्राणने कुछ न सुना और अगले दिन मसूरीको प्रणाम करके आगे बढ गया। राजकी अवस्था मुरदे जैसी थी। वह पीली पड गई थी। उसके नेत्र मूज गये थे। प्राणने उस क्षणके बाद फिर एक शब्द भी ऐसा नही कहा, जो उसे दिलीपकी याद दिला सके, लेकिन याद क्या दिलानेसे आती है। वह तो अन्तरमे सोतेकी भाँति उफनती है, राजके अन्तरमें भी उफनती रही। उसी उफानको शान्त करनेके लिए प्राण मसूरीसे लखनऊ आया। वहाँसे कलकत्ता और फिर मद्रास होता हुआ दिल्ली लौट आया। दिन बीत गये, महीने भी आये और चले गये। समयकी सहायता पाकर राज दिलीपको भूलने लगी। प्राणने फिर व्यापारमे ध्यान लगाया, पर साथ ही उसके मनमे एक आकाक्षा बनी रही। वह राजको फिर शिशुकी अठखेलियोमे खोया देखना चाहता था। वह कई बार अनाथालय और शिशु-गृह गया, पर किसी बच्चेको घर न ला सका। जैसे ही वह आगे बढता कोई अन्दरसे बोल उठता, 'न जाने कौन कब आकर इसका भी माँ-बाप होनेका दावा कर बैठे।'

और वह लौट आता। इसके अलावा बच्चेकी चर्चा चलनेपर राजको

दुख होता था। कभी-कभी तो दौरा भी पड जाता था। वह अब एकान्त-प्रिय, सुस्त और अन्तर्मुखी हो चली थी। प्राण जानता था कि यह प्रभाव अस्थायी है। अन्तरका आवेग इस आवरणको बहुत शीघ्र उतार फेकेगा। नारीकी जडे जहाँ है, उसके विपरीत फल कहाँ प्रगट हो सकता है? वह एक दिन किसी बच्चेको घर ले आवेगा और कौन जानता है तब तक ।

वह इसी उधेडबुनमे था कि एक दिन उसने होटलमे लौटते हुए देखा कि एक व्यक्ति उन्हे घूर-घूरकर देख रहा है। उसने कुछ विशेष ध्यान नही दिया। लोग देखा ही करते है। आजके युगका यह फैशन है। उसके पडौसमे एक सज्जन रहते है। जब-तब अवसर पाकर छतकी दीवारसे झाँककर राजको देखा करते है। राजने कई बार उनकी इस हरकतकी शिकायत भी की थी। लेकिन अगले दिन, फिर तीसरे दिन, चौथे दिन यहाँतक कि प्रतिदिन वही व्यक्ति उसी तरह उनका पीछा करने लगा। अब प्राणको यह बुरा लगा। उसने समझा इसमे कोई रहस्य है क्योकि वह व्यक्ति राजके सामने कभी नही पडता था और न राजने अबतक उसे देखा था। कम-से-कम वह इस बातको नही जानता था। यही सब कुछ सोचकर प्राणने उस व्यक्तिसे मिलना चाहा। एक दिन वह अकेला ही होटल आया और उसने उस व्यक्तिको पूर्ववत अपने स्थानपर देखा प्राणने सीधे जाकर उसके कन्धेपर हाथ रख दिया। वह व्यक्ति एकदम काँप उठा, बोला, 'क्या, क्या है?'

प्राणने शान्त भावसे कहा, 'यही तो मै आपसे पूछने आया हूँ।'

अचरजसे वह व्यक्ति जिस तरह काँपा, उसी तरह एकदम दृढ होकर बोला, 'तो आप समझ गये। क्षमा करिये मै स्वय आपसे बात करने-वाला था।'

'अबतक क्यो नही कर सके?'

उसने उसी तरह कहा, 'क्योकि मै पूर्ण विश्वस्त नही था और आप जानते है आजके युगमे ऐसी-वैसी बाते करना मौतको बुलाना है।'

प्राण उसकी वाणीसे आश्वस्त तो हुआ, पर उसका हृदय धक-धक कर उठा। उसने कहा, 'आप ठीक कहते हैं, पर अब आप निस्संकोच होकर जो चाहे कह सकते हैं।'

वह बोला, 'बात ऐसी ही है। आप बुरा न मानिये।'

'आप कहिये।'

वह तनिक झिझका, फिर शीघ्रतासे बोला, 'आपके साथ जो नारी आती है, वह आपकी कौन है?'

'आपका मतलब?'

'जी।'

प्राण सँभला, बोला—'वह मेरी सब कुछ है और कुछ भी नही है।'

'जी, मै पूछता था क्या वे आपकी पत्नी हैं?'

'मेरी पत्नी?'

'जी।'

'नही।'

'नही?'

'जी हाँ।'

'आप सच कह रहे है?'—उसकी वाणीमे अचरज ही नही हर्ष भी था।

'जी हाँ! मै सच कहता हूँ। अग्निको साक्षी करके मैने कभी उससे विवाह नही किया।'

'फिर?'

'लाहौरसे जब भागा था, तब मार्गमे एक शिशुके साथ उसे मैने संज्ञाहीन अवस्थामे एक खेतमे पाया था।'

'तब आप उसे अपने साथ ले आये।'

'जी हाँ।'

'फिर क्या हुआ?'

'होता क्या ? तबसे वह मेरे साथ है।'

'लोग उसे आपकी पत्नी समझते है।'

'यह तो स्वाभाविक है। पुरुषके साथ इस तरह जो नारी रहती है, वह पत्नी ही होगी, इसमे आगे आजका आदमी क्या सोच सकता है, पर आप ये सब बाते क्यो पूछते है ? क्या आप उसे जानते है ?'

'जी', वह काँपा, बोला, 'वह वह मेरी पत्नी है।'

'आपकी पत्नी'—प्राण सिहर उठा।

'जी।'

'और आप उसे चोरोकी भाँति ताका करते हैं ?'

अब उसका मुँह पीला पड गया और नेत्र झुक गये, पर दूसरे ही क्षण न जाने क्या हुआ। उसने एक झटकेके साथ गरदन ऊँची की, बोला, 'उसका एक कारण है। मै उसे छिपाऊँगा नही। उन मुसीबतके क्षणोमे मै उसकी रक्षा नही कर सका था।'

प्राण न जाने क्यो हँस पडा, 'छोडकर भाग गये थे। अक्सर ऐसा हुआ है।'

'भागा तो नही था, पर प्राणोपर खेलकर उसतक आ नही सका था।'

'वह जानती है ?'

'नही कह सकता।'

'आपको भय है कि वह जानती होगी ?'

'भय तो नही, पर ग्लानि अवश्य है।'

प्राणके भीतरके मनको जैसे कोई धीरे-धीरे छुरीसे चीरने लगा हो, पर ऊपरसे वह उसीतरह शान्त स्वरमे बोला, 'तो राज आपकी पत्नी है, सच ?'

उस व्यक्तिने रुँधे कण्ठसे कहा, 'कैसे कहूँ'। मैंने उसको ढूँढनेके लिए क्या नही किया ? सभी कैम्पोमे, रेडियो स्टेशनपर, पुलिसमे—सभी जगह उसकी रिपोर्ट मौजूद है।'

प्राण बोला, 'आप उसे लेजानेको तैयार है?'

वह झिझका नहीं, कहा, 'जी इसीलिए तो रुका हूँ।'

'आपको किसी प्रकारका सकोच नही?'

'सकोच'—उसने कहा, 'सकोच करके मै अपने पापोको और नही बढाना चाहता। महात्माजी ।'

'तो फिर आइये'—प्राणने शीघ्रतासे उसकी बात काटते हुए कहा, 'मेरे साथ चलिये।'

'अभी?'

'इसी वक्त। आप कहाँ रहते है?'

'जालधर।'

'काम करते है?'

'जी हाँ। मुझे स्कूलमे नौकरी मिल गई है?'

'आपके बच्चे तो दोनो मारे गये थे?'

'जी, एक बच गया था।'

'सच?'

'जी, वह मेरे पास है।'

प्राणका मन अचानक हर्षसे खिल उठा। शीघ्रतासे बोला, 'तो सुनिये, राज घरपर है। आप उसे अपने साथ ले जाइये। मै पत्र लिखे देता हूँ।'

'आप नही चलेगे?'

'जी नही! मै बाहर जा रहा हूँ। लखनऊमे एक आवश्यक कार्य है। तीन-चार दिनमे लौटूंगा, आप उसे ले जाइयेगा। कहना उसका पुत्र जीवित है। मुझे देखकर वह दुखी होगी। समझे न।'

'समझ गया।'

'आप भाग्यवान है। मै आपको बधाई देता हूँ और आपके साहसकी प्रशसा करता हूँ।'

वह व्यक्ति कृतज्ञ, अनुगृहीत कुछ जवाब दे कि प्राणने एक परचा उसके हाथमे थमाया और बिजलीकी भाँति गायब हो गया।

पत्रमे लिखा था

राज !

> वहादुर लोग गलती कर सकते है, पर धोखा देना उनकी प्रकृतिके विरुद्ध है। फिर भी दो शब्द मुझे तुम्हारे पास लानेको पर्याप्त है। प्रयत्न करना उनकी आवश्यकता न पडे। मुझे जानती हो, मरनेतक जीता रहूँगा,
>
> प्राण।

यह व्यक्ति ठगा-सा वहुत देरतक वही खडा रहा। कगालकी फटी झोलीमे कोई रत्न डाल गया हो, ऐसी उसकी हालत थी, पर जन्मसे तो वह कगाल नही था। इसलिए साहसने उसे धोखा नही दिया और वह प्राणके वताये मार्गपर चल पडा।

पूरे पन्द्रह दिन वाद प्राण लौटा। जबतक उसने द्वारको नही देखा, उसके प्राण सकतेमें आये रहे। जब देखा कि द्वार बन्द है और उसका चिर परिचित ताला लगा है तो उसके प्राण तेजीसे काँपे। किवाड खोलकर वह ऊपर चढता ही चला गया। आगे कुछ नही देखा। देख ही नही सका। पालना पडा था, उससे ठोकर लगी और वह पलगकी पट्टीसे जा टकराया। मुखसे एक आह निकली। माथेमे दर्दका अनुभव हुआ। खून निकल आया था। उसने हाथसे चोटको सहलाया। आँखोने तभी खून देखा, फिर पालना देखा, फिर पलग देखा, फिर घर देखा। सब कही मौनका राज्य था। प्रत्येक वस्तु पूर्वत अपने स्थानपर सुरक्षित थी। प्राणके मनमे उठा, पुकारें—राज !

पर वह काँपा—राज कहाँ है ? राज तो चली गई। राजका पति आया था। राजका पुत्र जीवित है। मुझ भी कैसा छल करता है। जा-

जाकर लौट आता है। राजको पति मिला, पुत्र मिला। दिलीपको माँ-बाप मिले। और मुझे... मुझे क्या मिला...?

उसने गरदनको जोरसे झटका दिया। फुस-फुसाया—ओह मैं कायर हो चला। मुझे तो वह मिला, जो किसीको नही मिला।

तभी सहसा पासकी छतपर खटखट हुई। राजको घूरनेवाले पडौसी-ने उधर झाँका। प्राणको देखा, तो गम्भीर होकर बोला—'आप आ गये?'

'जी हाँ।'

'कहाँ चले गये थे?'

'लखनऊ।'

'बहुत आवश्यक कार्य था क्या? आपके पीछे तो मुझे खेद है...।'

'जी क्या?'

'आपकी पत्नी...।'

'मेरी पत्नी?'

'जी, मुझे डर है वह किसीके साथ चली गई।'

'चली गई? सच! आपने देखा था?'

'प्राण बाबू! मै तो पहले ही जानता था। उसका व्यवहार ऐसा ही था। कोई पन्द्रह दिन हुए आपके पीछे एक व्यक्ति आया था। पहले तो देखते ही आपकी पत्नीने उसे डॉटा।'

'आपने सुना?'

'जी हाँ। मै यही था। शोर सुनकर देखा, वह क्रुद्ध होकर चिल्ला रही है—'जाओ, चले जाओ। तुम्हे किसने बुलाया था? तुम क्यों आये? मैं उन्हे पुकारती हूँ?'

'सच, ऐसा कहा?'

'जी हाँ।'

'फिर?'

'फिर क्या प्राण बाबू ! वे बाबू साहब बड़े ढीठ निकले। गये नही। एक पत्र आपकी पत्नीको दिया, फिर हाथ जोडे। पैरोमे पड गये।'

'क्या यह सब आपने देखा था ?'

'जी हॉ, बिलकुल साफ देखा था।'

'फिर ?'

'फिर वे पैरोमे पड गये, पर आपकी पत्नी रोती रही। तभी अचानक उसने न जाने क्या कहा। वह कॉपकर वही गिर पडी। फिर तो उसने, क्या कहूँ, लाज लगती है। जीमे तो आया कि कूदकर उसका गला घोट दूं, पर मै रुक गया। दूसरेका मामला है। आप आते ही होगे। राततक राह देखी, पर आप नही आये। सवेरे उठकर देखा, तो वे दोनो ला पता थे।'

'उसी रात चले गये ?'

'जी हॉ।'

प्राणने सॉस खीची, 'तो वे सच्चे थे, बिलकुल सच्चे।'

पडौसीने कहा, 'क्या ?'

'जी हॉ। उन्होने वही किया, जो उन्हे करना चाहिए था।'

और फिर अचरजमे बुत बने पडौसीकी ओर देखकर बोला—'वे भाई, राजके पति थे।'

'राजके पति' !—चकित पडौसी और भी अचकचाया।

'जी हॉ ! पजाबसे भागते हुए हम लोगोके साथ जो कुछ हुआ, वह तो आप जानते ही है। राजको भी मैने लाशोके ढेरमेसे उठाया था। वह तब जानती थी कि उसके पति मर गये है, इसीलिए वह मेरे साथ रहने लगी।'

पडौसी अभीतक अचकचा रहे थे, बोले, 'आपके साथ रहनेपर भी उन्हे राजको ले जानेमे सकोच नही हुआ ?'

प्राणने कहा, 'सो तो आपने देखा ही था।'

वह क्या कहे, फिर भी ठगा-सा बोला, 'आपका अपना परिवार कहाँ है?'

'भागते हुए मेरी पत्नी और माँ-बाप दरियामे बह गये थे। बच्चे एक-एक करके रास्तेमे सो गये।'

'भाई साहब'—पडौसी जैसे चीख पडेगे, पर वे बोल भी न सके। मुँह उनका खुले-का-खुला रह गया और दृष्टि स्थिर हो गई!

१९४९]

मार्गमें

रात्रिका पहला पहर था। जगलमे ठडी हवा फर्राटेसे चल रही थी। उसीसे उलझकर पत्ते तेज़ीसे फडफडाते और फिर हिलते रहते, वैसे चारो ओर सन्नाटा था। चॉद उग आया था और शरतकालीन आस्मान नीले प्रकाशसे भरा पडा था। धरतीकी छातीपर चॉदनी इस तरह चिपक रही थी, जैसे सुकुमार शिशु मॉकी छातीसे चिपककर मुस्करा उठता है। ऐसे समयमे एक युवक खेतोके बीचसे जाती हुई टेढी-मेढ़ी पगदडीपर तेज़ीसे आगे वढ रहा था। उसे वातावरणमे कोई दिलचस्पी नही थी। शीतसे उसकी नसे तडकने लगी थी और वह थककर चूर हो रहा था। उसके कधोपर बँधे हुए दोनो फौजी थैले उसकी छातीपर दो बडे-वडे पत्थरोकी तरह मालूम हो रहे थे। इसीलिए वह रह-रहकर सामने देखने लगता था। वहाँ दरख़्तोके झुरमुटके पीछे गॉवके कच्चे मकान थे, जो अभी नज़रसे दूर थे और इसीलिए उसके दर्दमे कोई कमी नही पड़ी थी। इसका एक और भी कारण था। वह इस गाँवमे किसीको नही जानता था। वह किसके पास जाकर ठहरेगा ? तव दुनिया वडी तेज़ीसे पलट रही थी। अन्न-वस्त्रकी समस्याने आचरण-व्यवहारके मूल्योमे गहरा परिवर्तन कर दिया था।

सहसा वह चौक उठा। एक लडखडाती, परन्तु तीखी आवाज उसके कानोसे आकर टकराई। वह आवाज गालियो और झिडकियोसे भरी हुई थी और कही पाससे आ रही थी। उसने दृष्टि उठाकर देखा—बाई ओर अरहरके खेतसे एक बुढिया एक लडकेको घसीटती हुई ला रही है। वह इतनी तेज़ीसे गालियॉ दे रही है कि वातका समझना असम्भव है। उसका मुँह झुर्रियो और गड्ढोसे भरा हुआ है और चाँदनी

रातमे उसकी हड्डियाँ साफ-साफ नजर आ रही है। उसके वस्त्र फटे हुए है और पैर नगे। इसीतरह वह लडका बुरी तरह चीख रहा है। उसके शरीरपर वस्त्र है, परन्तु फिर भी वह गन्दा और दयनीय लगता है।

इन्हे देखकर वह ठिठक गया और उसे देखकर बुढिया एकदम चुप हो गई। एक क्षण दोनोने एक-दूसरेको देखा और फिर बुढिया बोली,

"परदेसी हो ?"

"हाँ।"

"किसके यहाँ जाना है ?"

उसने जवाब दिया, "मुझे आगे जाना है। मैं यहाँ किसीको नहीं जानता। रातभर पंचायत-घरमे ठहरूँगा।" और फिर बच्चेकी ओर मुडकर कहा, "यह क्यो रोता है ?"

बुढिया गुस्सेसे भरकर बोली—"इसकी तकदीरमे रोना लिखा है, इसलिए रोता है। इतनी रात हो गई और ऐसी हवा चल रही है, पर यह घर जानेका नाम नही लेता। डर भी नही लगता मरेको। किसी दिन भेडिया उठाकर ले गया तो ? और ले जाये, मुझे क्या पडी है ? मेरी जान बचेगी। इस उमरमे परमात्माने यह बला मेरे पीछे लगा दी है। उठाता भी तो नही इसे। भला यह भी कोई बात है, रोज-रोज यहाँ आओ ! इतनी सरदी, जगल और इतनी रात ! घरमे दस काम है। कौन बैठा है जो पो कर खिला देगा। दर-दर भीख माँगता फिरेगा और आजकल तो कोई भीख भी नही देता।"

बुढियाकी वाणीका सतत प्रवाह बन्द होनेवाला नही था। बालकका रोना अलबत्ता अब सिसकियोमे पलट चुका था। उसने एक बार फिर उन्हे देखा। कहा, "बडा निडर लडका है ! क्या उमर होगी इसकी ?"

"होगा पाँचेक सालका। इसकी माँ जब मरी थी तो तीन सालका था। उसे गोली खाये डेढ वरस हो गया।"

उसने अचकचाकर पूछा, "इसकी माँने गोली खाई थी, कैसे ?"

"कैसे क्या ? खेतमे घास छील रही थी। गोली आकर लग गई, उसे ही क्या, जाने किस-किसके लगी थी, पर इसकी माँने तो पानी भी नही माँगा। फौज क्या कम थी। सारे गाँवमे भर गई थी। जिसे चाहा लूटा, जिसे चाहा मार डाला। जवान बहू-बेटी तो उनकी आँखोका काँटा बन गई थी। पूछो मत बेटा और बेटा, गाँववाले क्या कम थे। उन्होने भी सब तार काट दिये, खम्भे उखाड डाले और जो सरकारी आदमी थे, सबको मारकर भगा दिया। रेलतक छीन ली थी, कहते थे—गाधी बाबाका हुक्म है। अंग्रेजी राज मिट चुका है।—मेरा बेटा भी उन्हीमे था।"

"तुम्हारा बेटा ?"

"हाँ, मेरा बेटा भी गोलीसे मारा गया। उसने तार काटे थे। न जाने दिमागमे क्या समा गया था। उछल-उछलकर इन तारोमे झूला करता था। जितने जवान छोकरे थे, बस उनका यही पेशा था—तार काटना, खम्भे उखाडना, पुल तोडना और बस इसीमे एक दिन गोली खाकर मर गया। भागा भी तो नही। कई छोकरे भागकर बच गये, पर वह ।"

कहते-कहते बुढियाकी आँखे भर आई, गला रुँध गया। उसने बच्चेको अपने पास खीच लिया। फिर बोली, "भला कोई बात है। इसकी माँ बेचारी क्या इन कामोको जानती थी। बेचारी गरीब औरत घास खोदकर पेट पालती थी। एक यही लडका उसके था। बाप पहिले ही मर चुका था।

उसका मन एक गहरे विषाद और एक गहरी करुणासे भर रहा था। उसकी थकान मिट गई थी। कम-से-कम उसका ध्यान अपनी ओर नही था। वह तीव्रतासे बुढिया और उसके बच्चेकी बात सोचने लगा था। उसने कहा, "तो इसका बाप भी मर गया। उसे भी गोली लगी थी।"

"नही बेटा। वह तो बीमार था। गोली इसकी माँको लगी थी।"

वह अचकचाया, "पर तुमने कहा था, तुम्हारे वेटेको गोली लगी थी।"

"हाँ, मेरे बेटेको गोली लगी थी, पर इसका वाप बीमार था।"

"इसका बाप तुम्हारा वेटा नही था?"

"नहीं।"

"यह तुम्हारा पोता नही है?"

"नहीं।"

साँझ पास आ गया था और हवाकी तेजी साँय-साँयमे पलटने लगी थी। उसको यह कहानी वडी रहस्यमय लगी। वुढिया कहती रही—"इसका बाप बहुत बीमार रहकर मर गया। इसकी माँ घास छीलने गई, तो फिर नही लौटी। फौजने उसे गोलीसे मार डाला। मेरा बेटा भी तभी मरा था। कई दिन वाद जव मैं कस्वेसे लौटी, तो ऐसी ही रात पड गई थी। इस खेतके पास आकर सुना—कोई सुवक-सुवककर रो रहा है। एक बार तो मैं डर गई। फिर मुडकर देखा, तो यह लडका बैठा था। इसके बदनपर कोई कपडा नही था और रो-रोकर इसने आँखे सुजा ली थीं। मुझसे देखा नही गया।"

बीचमें टोककर वह बोल उठा, "और तव तुम उसे अपने साथ ले गईं?"

"और क्या करती! मेरा बेटा मर गया था और मैं अकेली थी। वेटेके पीछे मेरा मन रो-रो पडता है, पर जब इसे देखती हूँ, तो जैसे कोई घावपर मरहम लगा देता है। लेकिन बेटे, डेढ साल हो गया, यह इस जगहको नही भूला। जैसे ही साँझ होती है, रोज यहाँ आ जाता है।"

"रोज?"

"हाँ।"

"रोता है?"

"पहिले रोता था, पर अब चुपचाप बैठा रहता है।"

"वैसे तुमसे हिल गया है?"

"हाँ। दिनभर मेरे पास रहता है।"

"और रहेगा भी?"

बुढियाने अचरजसे उसे देखा, "रहेगा नही तो कहाँ जायगा? कौन इसे पालेगा? बेचारा मासूम बच्चा। उन्होने इसकी माँको मार डाला और मेरे बेटेको खा गये। इसे माँ चाहिए और मुझे ।"

वे अब गाँवमे प्रवेश कर चुके थे और कुत्ते भूँकने लगे थे। बुढिया यही रुक गई और अपनी ही बात काटकर बोली, "यह मेरी झोपडी है। रात यही ठहर जा। अब कहाँ जायेगा।"

उसने एक बार उस घरको देखा, जो बुढियाकी तरह थका हुआ और ककाल था और फिर बिना कुछ कहे, उसके पीछे पीछे अन्दर चला गया। अन्दर जा रहा था, तो सहसा एक बार मनमे उठा—क्या सचमुच वह जाग रहा है अथवा यह कोई स्वप्न है।

१९४८]

पर्वतसे भी ऊँचा

विष्णुप्रयागकी थका देनेवाली उतराई और चढाईके बाद जब मै घाटीमे बसी बल्दौडा चट्टीपर पहुँचा, तभी वह भी बद्रीनाथसे लौटता हुआ वहाँ आकर रुका। उस समय दिनके ग्यारह बज चुके थे और आसमान साफ था। मेरे सामने चारो ओर ऊँचे-ऊँचे भूधर रातकी शुभ्र-स्वच्छ हिमको मस्तकपर धारण किये, अनन्त सम्पदाके गर्वोन्मत्त स्वामीकी तरह, अहकारकी मुस्कानसे सज्जित, अनन्तकी ओर निहार रहे थे। नीचे अलख जगाती हुई हर्षोन्मत्त अलखनन्दा, विष्णुगगाके आत्मसमर्पणको स्वीकार करने पागलोकी भाँति भागी जा रही थी । प्रकृतिकी इस विशालता और महानताने तब मुझे अभिभूत कर लिया। मै उस क्षण सब कुछ भूलकर अपने बहुमूल्य दूरवीक्षण यत्र द्वारा देवदार और ओकके वृक्षोके परे, सुगन्ध और शक्तिको नाभिमे छिपाये रखनेवाले कस्तूराको खोजने लगा। कुछ क्षण पूर्व दाई (बोझा ढोनेवाला)ने मुझे बताया था—'भालू और कस्तूरा, और कभी-कभी बाघ भी उसपार नीचेतक उतर आते है। तब साहब लोग उनका शिकार करते है।'

यद्यपि तब उनके आनेकी कोई सभावना नही थी, तो भी मुझे लगा कि हो सकता है वृक्षोकी छायामे कोई कस्तूरा, मेरी तरह, साँस लेने रुक गया हो, पर मै यत्रका उपयोग पूरी तरह कर भी न पाया था कि वह तग घाटी अनेक व्यक्तियोके मुक्त अट्टहाससे गूँज उठी। चकित होकर मैने उस दिशामे देखा। एक दाईने खिलखिलाते हुए कहा, 'सुना बाबूजी!'

'क्या?'

'यह बाबा कहते है, दर्शन तो हो गये, पर अब घर कैसे पहुँचे?'

तब मेरी दृष्टि हँसीके पात्र उस बाबापर गई। देखा—एक क्षीणकाय

वृद्ध है, जिसका पतला मुख क्षीरके समान श्वेत बालोसे ढका हुआ है परन्तु उनके बीचसे झॉकते हुए उसके दोनो नयन अमित विश्वाससे पूर्ण हैं। उसके पैर लडखडाते हैं। उसने एक मैली धोती और कन्धेकी ओर लगनेवाले बटनोका एक कुरता पहना है, जिसके भीतरसे निकलता हुआ जनेऊ उसके द्विजत्वका साक्षी है। उसकी कुल सम्पत्तिमे एक लाठी, एक कम्बल तथा एक वैसी ही मैली धोतीकी गणना की जा सकती है।

मैं अपना निरीक्षण पूर्ण करूँ, इससे पूर्व चट्टीके एक दूकानदारने पूछा, 'क्यों बावा, क्या बात है?'

बावाने उत्तर दिया, 'भूखा हूं, चला नही जाता।'

'भूखे हो तो रोटी बना लो।'

'कैसे बना लूं?'

'क्यो? आॅटमें कुछ नही है?'

बावाने नही सुना। जान पड़ा, वह बहरा भी है। प्रश्नके जोरसे दोहराये जानेपर उसने बताया कि उसके पास कुछ नही है।

'जान पडता है बावा! तुम पडोके चक्करमे पड गये थे। बडे दुष्ट होते है ये लोग। सब कुछ छीन लेते है।'

बावाने बधिरके-से उसी शान्त भावसे कहा, 'पडेने कुछ नही छीना। उसे तो बस आध सेर आटा दिया। मेरे पास वही था।'

फिर एक अट्टहास उठा जिसमे बावाने भी योग दिया। एक दूकान-दारको शायद बावाके भोलेपनपर कुछ दया आई। वह उठा और एक तसलेमे पावभर आटा और नमक ले आया। बोला, 'लो बावा, आटा मयो और इस भट्टीपर रोटी बना लो। तवा यह पडा है।'

उस क्षण बावाके लडखडाते हुए पैर और भी लडखड़ाने लगे। नयनोमे तरलता चमक उठी, पर उसके बाद उसमे जो स्फूर्ति उमड़ी वह अलखनन्दाके लिए स्पर्द्धाके योग्य हो सकती है। देखते-देखते उसने

आटा मथा और उसकी दो मोटी-मोटी रोटी बनाई । एक रोटीको तवेपर डाला, पलटा और फिर भट्टीमे डाल दिया।

आसपासके व्यक्तियोने यह सब देखा और हँसते हुए कहा, 'बाबा ! ऐसे बेसबरे मत बनो। रोटी कच्ची है।'

बहरे बाबा और भी बहरे हो गये। कुछ ही क्षणोमें उसने दोनों रोटियाँ भट्टीसे निकालकर फिर तसलेमे रखी। फिर नलपर जाकर हाथ-पैर धोये और अन्तमे तसलेको लेकर, मेरे पास ही उस तग और नीची काली दीवारोवाली चट्टीमे आ बैठा। दो क्षण मौन रहा, सभवतः तब वह अन्नपूर्णाका स्मरण कर रहा था। उसकी मुद्रा बता रही थी कि क्षुधा उसे क्रूरतासे पुकार रही है और वे क्षण युग बन चले है। किसी तरह वे बीते और उसके बाद उसने कच्ची पक्की रोटीको मसल-मसलकर निगलना शुरू किया।

दाईने फिर मजाक करते हुए कहा, 'बेसबरे बाबा ! रोटी कच्ची है।'

बाबाने अब मुस्कराकर गरदन उठाई और बोला, 'रोटियाँ कच्ची नही है। मै तो घर भी ऐसी ही बनवाता हूँ। मेरे दाँत कहाँ है जिनसे करारी रोटियाँ चबाऊँ ?'

'बाबा, साग लोगे ?' दूसरेने ठठोली की।

'नमक पडा है।' बाबाने शान्त भावसे हाथ हिलाते हुए कहा।

मै अबतक चुप था, परन्तु मेरे नयन उसकी प्रत्येक गतिविधिका निरीक्षण कर रहे थे। वह कैसे तसलेमे पड़ी हुई रोटीको तोडता और निगलता, कैसे रोटीका कच्चा-पक्का ग्रास गलेमे अटकता हुआ उतरता, फिर कैसे वह हिचकी लेता।

किसीने फिर कहा, 'बाबा मरेगा।'

दूसरा कुछ घृणासे बोला, 'अरे, यूँ ही माँगता-खाता चला जायगा। ऐसे दम्भियोको मौत नही आती।'

मैंने एक बार उस व्यक्तिको देखा और फिर बाबाको। कहनेवाला

सम्पन्न व्यक्ति था। वह उस श्रेणीका था, जो कही भी हो नियमसे दिनमे चार बार खाते हैं। जिनके आगे-पीछे नौकर घूमा करते है। उसपर भी वे श्रमके भारसे पिसते रहते है। उनके लिए बाबाकी जातिके नर-ककाल, जो केवल श्रद्धाके बलपर बीहड वनो, विकराल नदियो और भयानक पथरीले मार्गोको पार कर जाते हे, दम्भी ओर पाखडी ही होते हैं।

कुछ अच्छा नही लगा। क्या बाबा सचमुच दम्भी है ? मेरी दृष्टि फिर उसपर जा ठहरी। वह रोटियाँ निगलकर फिर नलकी ओर जा रहा था। उसके पैर पूर्वत लडखडा रहे थे। कोन जाने, वे कहा जवाब दे दे ? उसे अभी सैकडो मील चलना है। शीत बढ रहा है और गिरि-शृगोका हिम भी दिग्विजयके लिए निकल पडा है। परन्तु उसके पास कोई गरम कपडा नही है ? क्या इसके घर कोई नही है ? क्या कही दूर ग्राममे बैठी इसकी वृद्धा पत्नी, इसके पुत्र-पौत्र, कोई इसकी राह नही देखता, कोई इसे याद नही करता ? सहसा मुझे अपने घरकी याद आ गई। मेरी पत्नीने लिखा था—'मुन्ना आपकी यादमे पागल हो रहा है। वह आपके कमरेमे जाता है और प्रत्येक वस्तुको उठाकर कहता है, यह मेरे पिताजीकी है, मुझे ताँगेमे बिठाकर पिताजीके पास ले चलो ।'

तब मेरे नयन भर आये और मेरे मनने कहा—इस बाबाकी भी कोई याद करता होगा। इसे घर पहुँचना ही चाहिए। मै इसकी सहायता करूँगा। पडे-पुजारियोको पैसे देता हूँ। पत्थरके देवतापर चढावे चढाता हूँ, फिर हाड-मासके इस पुतलेको कैसे भुला दूँ ? मेरे जैसे भावुको-की भावनापर डकैती डालनेके लिए, जिन लोगोने स्थान-स्थानपर मठ-मन्दिर ओर मूर्तियाँ स्थापित की है पाखडी वे है, बाबा तो ।

तभी सहसा मेरा ध्यान भग हो गया। देखा—बाबा मेरे सामनेवाली बैचपर आ बैठा है और एक बीडी सुलगानेका प्रयत्न कर रहा है। मैंने यन्त्रवत् उससे पूछ लिया, 'बाबा, कहाँ रहते हो ?'

बाबाने बिना किसी झिझकके कहा, 'मुरादाबाद जिलेमे जमना पाडा गॉव है।'

'बडी दूर है, कैसे जाओगे ?'

'अजी, दूर क्या है ? बस, हरिद्वार पहुँच जाऊँ, समझ लो, घर पहुँच गया। वहाँ मेरा भाई है।'

'सगा भाई ?'

'अजी गॉवका है; पर, तुम जानो जी, परदेशमे गॉवका भाई सगा भाई है। फिर वहाँ बेटी है, बहन है। दिको बेटीके यहाँ तो क्या जाऊँगा, पर बहनके तो जा सकता हूँ। और दिकोजी ! मै तो धोखेमे आ गया। आती बेर कोटद्वारसे आया। हरिद्वारसे आता तो रुपये लेकर आता ।'

मै न टोकता तो बाबा रुकनेवाला नही था। मैंने अनुभव किया कि, बाबाको किसी बातकी भी चिन्ता नही थी। वह १६५ मील दूर हरिद्वार जानेकी बात ऐसे कह रहा था जैसे हवाई जहाजसे जाना हो। मैंने टोककर पूछा, 'बाबा, घरपर कौन है ?'

बाबा हँसा। बोला, 'सब है। दिको बाबूजी, बात यह हुई। अब तुमसे क्या छिपाना ? उसने मना किया था और बेटेने भी। एक बेटा है सोलह सालका।'

'क्या करता है ?'

'दो लडकियाँ है, अपने घरकी है।'

एक अट्टहास उठा। बाबाने मेरा प्रश्न नही समझा। मैंने उसे फिर दोहराया। बाबा बोला, 'बाबूजी, घरपर एक भैंस है, दो गायें है। आपकी दयासे एक ग्याभन है। उसे क्या डर है ? बस जी, उन्होंने बहुत मना किया। उनकी मरजीसे आता तो रुपये देते, पर मैंने भी कैलाश जानेकी ठान ली थी। सो चल पडा। कह आया—भागवान, तेरा बस एक कम्बल लिये जा रहा हूँ।'

उसने बीडीका कश खींचा और एक क्षण रुककर कहा, 'और दिको

बाबूजी। बात तो उन्होने भी ठीक ही कही थी। अगले महीने धैवतीकी शादी है। अब तुम जानो, भात दे लो या दर्शन कर लो। पर तुम जानो मुझे भी धुन थी। चल पडा।'

'तो क्या अभी कैलाश जाओगे ?'

'अजी, चला तो कैलाशके लिए था, पर किसीने रास्ता नही बताया। नेपाल पहुँच जाता तो बाबूजी! कैलाश भी पहुँच जाता। दिको बाबूजी तुम्हे बताऊँ। मैंने प्रेमसागरमे पढा था कि कैलाशमे शिवजी रहे है। बस, तभी उनके दर्शनोकी ठान ली। मैंने सोचा, कैलाश भी द्वारकाकी तरह बसा होगा। बाबूजी, मैं द्वारका हो आया हूँ।'

कहते-कहते वह गर्वसे भर उठा। बोला, 'बाबूजी! द्वारकापुरीके चारो तरफ़ पानी ही पानी है, ऐसा पानी कि मुँहमे दो तो जानो नमक भर गया। पर वही द्वारकाकी भूमिमे कुएँ है, उनका पानी मीठा है। उसकी मायाका पार नही, बाबूजी।'

मैं कुछ कहूँ उससे पहले ही वह फिर हँसा, 'पर अच्छा हुआ, यहाँ आ गया। बादल बनते देख लिये।'

'अच्छा!'

'हाँ जी, बस पहाडोमेसे धुआँ-सा उठता है और बादल बन जाते है। बडा अच्छा हुआ। भगवानके दर्शन हो गये। उसकी माया देख ली। अब तो चला ही जाऊँगा। और न भी जाऊँ तो क्या है!'

मैंने सहसा कहा, 'जाओगे कैसे, ऐसे ही माँगते-खाते ?'

वह तनिक भी अप्रतिभ नही हुआ। उसी सरल स्वाभाविक विश्वाससे बोला, 'दिको बाबूजी! भूख लगती है तो सब माँगते है। प्रेमसागरमे मैंने पढा है कि गाय चराते-चराते एक बार श्रीकृष्णजीको बडी भूख लगी। तब उन्होने श्रीदामाको उस वनमे यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणोके पास भिक्षा माँगने भेजा था।'

और फिर उसने उसी मस्तीमे वह सारी कथा मुझे सुना दी, जिसमे

ब्राह्मणोने तो भिक्षा नही दी थी, पर उनकी पत्नियोने दी थी। सुनकर मुझे ऐसा लगा कि यह बाबा मुझसे कुछ माँगे, तो मै भी इसे दूँ।

पर इससे पहले कि मै कुछ कहूँ, वह फिर बोल उठा, 'पर दिको बाबूजी ! भूख एक दिनकी हो या तीन दिनकी, आदमी खाता उतना ही है जितना उसका पेट हो।'

जैसे एक झटका लगा। मैने दृष्टि उठाकर उसे देखा। वह अपनी भोली हँसी हँस रहा था। कह रहा था, 'ज्यादा कोई खा ही नही सके। जो खावे वह पाप करे। तुम जानो श्रीकृष्ण कोई भिखारी थोडे थे, भगवान थे। उन्हे भी भूख लगी और उन्होने भोजन माँगा, और कुछ नही माँगा।'

फिर एक झटका लगा। घृणा धुली, श्रद्धाने आदरको जन्म दिया। मेरा हाथ जो जेबसे रुपये निकालनेको बढा था, एकाएक रुक गया। यह सब एक क्षणमे ही हो गया। दूसरे क्षण बाबाने बीडीका अन्तिम कश खीचा और लकडी उठाई। बोला, "अच्छा बाबूजी चलता हूँ। दिको, दर्शन तो हो ही गये। अब मर भी गया, तो कोई बात नही। पहुँच गया, तो फिर किसी दिन कैलाशको चल दूँगा।'

और वह चल पडा। उसके पैर लडखडा रहे थे। वह उस दुर्गम-पर्वत-मार्गपर एक-एक कदम रखता हुआ आगे और आगे बढ रहा था। आसपासके सभी व्यक्ति न जाने क्यो हँसना भूल गये थे। उसके उठते ही मै भी उठा। दो कदम चला। चाहा पुकारूँ, 'ओ बाबा ! तुम्हे बहुत दूर जाना है, लो एक रुपया तो लेते जाओ। दो-चार दिनकी छुट्टी मिलेगी।'

पर तभी मेरी दृष्टि उसकी दूर होती हुई लडखडाती आकृतिपर पडी। फिर सामनेके गगनचुम्बी पर्वत-शृगको देखा। सहसा लगा—बाबा, उस शृगके ऊपर होकर बडी शीघ्रतासे आगे बढ रहा है। मैने आँखे मली, पर वह आकृति उसी तरह आगे बढती चली गई। उसकी दृढताने मेरी दया-भावनाको झकझोर दिया। उसके सरल पर अमित विश्वासके सामने गर्वोन्मत्त पर्वत और अभिमानिनी सरिताएँ नितान्त हेय जान पडी।

मुझे उस क्षण लगा—उसे कुछ देनेका विचार करना उसे छोटा करनेकी स्पर्धा करना है। नही, नही! मै उसे क्या दे सकता हूँ? मुझे तो उलटे उस महानके विश्वासके एक अशकी आवश्यकता है कि जिसके सहारे मै इन अलघनीय घाटियोको हँसते-हँसते पार कर जाऊँ। अगस्तके पास, पाण्डवोके पास, स्कॉटके पास, कुक, लिवगस्टन और कोलम्बसके पास यही विश्वास तो था!

तब मैने हाथ जोडकर मन ही मन उस महान्को प्रणाम किया और चुपचाप अपने स्थानपर लौट आया।

१९५०]

जजका फ़ैसला

सवेरा होनेपर हमारे सैकिण्ड क्लासके डिब्बेमे काफी यात्री आ गये थे। जब गाडी स्टेशनसे चली, तो वे सब मौन थे, परन्तु मार्गमे न जाने किस-किस सूत्रसे होकर उन सबमे वार्तालाप आरम्भ हो गया। विहटा स्टेशन गुजर जानेपर सहसा एक प्रौढ सज्जन, जिनकी सघन श्वेत भौहे चमकीले नयनोपर छज्जेकी तरह छा रही थी, बोले, "यहॉपर एक बार बहुत भयकर दुर्घटना हो गई थी। रेल-यात्राके इतिहासमे कई कारणोसे वह अभूतपूर्व रहेगी। उसमे सौसे भी ऊपर यात्रियोकी जान गई थी और उससे भी कुछ अधिक यात्री घायल हुए थे।"

इसपर नदीकी तरह चर्चाने अपना मार्ग विलकुल वदल लिया। यद्यपि हममेसे कोई भी यात्री उस दुर्घटनाका साक्षी नही था, तो भी कुछ लोगोने दूसरी दुर्घटनाओको देखा था और उनका वर्णन करते-करते वे ऐसे सहम रहे थे जैसे वे दुर्घटनाएँ अभी घट रही हो। एक स्वस्थ और लम्बे-तगडे युवकने जब दो आपबीती रोमाचकारी घटनाएँ सुनाई, तो हम सब ठगेसे उसे देखते रह गये। वह इजीनियर था। एक बार वह चलती ट्रेनके नीचे आ गया था यद्यपि उसका शरीर जख्मोसे भर गया था, तो भी उसके प्राण वच गये थे। कैसे बच गये थे, यह वह स्वय भी नही जानता था। जब वह गिरा तो गाडी स्टेशनमे प्रवेश कर रही थी। उसकी गति निरन्तर धीमी हो चली थी और उसने डिब्बेमे चढनेवाली पैडीको कसकर पकड़ लिया था। लेकिन दूसरी घटना बहुत भयकर थी। पौडी-गढवालसे कोटद्वार लौटते समय उसकी बस ढाई सौ फुट नीचे खड्डमे जा पडी थी। दस व्यक्ति वही मर गये थे और पॉच अस्पतालमे पहुँचकर चल वसे थे, पर वह कुछ जख्मोके साथ वच गया था। कैसे

बच गया, यह पूछनेपर वह इतना ही कह सका, "बस बच गया। अब आपके सामने बैठा हूँ।"

उस युवककी यह कहानी सुनकर हम सबको रोमाच हो आया और हमने उसे बहुत-बहुत बधाई दी। पर उसने शरारतसे मुस्कराकर कहा, "दोस्तो! मैने मौतको ही नही छकाया, बीमा कम्पनीसे हर्जानेके रुपये भी वसूल किये।"

इसपर एक कहकहा लगा और जब वह शान्त हुआ तो दुर्घटनाकी चर्चा शुरू करनेवाले प्रौढ सज्जन, जो एक सेवा-निवृत जज थे बोले, "अपने इजीनियर मित्रकी तरह मौतको छकानेका अवसर तो मुझे नही मिला पर हाँ, इस दुर्घटनासे सम्बन्धित एक विचित्र मामलेका न्याय करनेका सौभाग्य मुझे अवश्य प्राप्त हुआ है।"

एक मित्र बोल उठे, "आपका मतलब बिहटा रेल-दुर्घटनासे है?"

"जी हाँ।"

"शायद इसमे कुछ षड्यन्त्रकारियोका हाथ था। आजकल राजनीतिक सत्ता प्राप्त करनेके लिए सैकडो निर्दोष व्यक्तियोकी जान ले लेनेका फैशन-सा हो गया है।"

जज महोदयने निहायत गम्भीरतासे गर्दन हिलाकर कहा, "मित्रो! उस मामलेका सम्बन्ध न तो किसी प्रकारकी राजनीतिसे है और न दुर्घटनाके कारणोसे।"

"तो?"

"उसका सम्बन्ध मानव-चरित्रसे है।"

इसपर इजीनियरने अनुमान लगाया, "जी हाँ, ऐसे अवसरोपर कुछ शरारती लोग अपना उल्लू सीधा करनेसे नही चूकते। जब शरीफ-यात्री भयके कारण चीखते-चिल्लाते, इधर-उधर भागते है, तो वे लोग सहायता करनेके बहाने उन्हे लूट ले जाते है।"

"आप ठीक कहते है", एक तीसरे भाईने उनका अनुमोदन किया,

"वे लोग घायलो और मुर्दोतककी जेब कतरनेसे नही चूकते।"

इसी प्रकार चौथे, पाँचवे, छठे और सातवे यानी डिब्बेके हर यात्रीने अपनी उर्वर कल्पना-शक्तिका प्रयोग करके अनुमानोका ढेर लगा दिया, लेकिन जज साहब हर बार सिर हिलाकर उन सबको गलत साबित कर देते थे। आखिर जब उन सबके अनुमानोका खजाना खाली हो गया तो जज साहबने कहना शुरू किया, "उस दुर्भाग्यपूर्ण रात्रिमे जो यात्री सफर कर रहे थे उनमें एक महिला भी थी। वे अपूर्व सुन्दरी थी। यद्यपि उनके विवाहको पाँच वर्ष बीत चुके थे, तो भी वे नवविवाहित दुलहनकी तरह लगती थी, उसी तरह मोहिनी ओर लजीली। उनके लम्बे पतले नील नयन, पतले नासापुट, कोमल मुख, किंचित नीले-भूरे सघन केश- देखकर भूख मिटती थी। वे प्राचीन कालकी उन सुन्दरियोमेसे थी जिनके देखने मात्रसे तिलक-पुष्प कुसुमित हो जाता था और जब वे मृदु मन्द गतिसे मुस्कराती थी तो चम्पाके फूल खिल उठते थे।

"इन पाँच वर्षोंने उनके व्यवहारमे जो कुछ अन्तर डाला था वह यही था कि अब वे कुछ नटखट भी हो चली थी और इसके कारण वे अपने पतिको और भी प्रिय हो गई थी। उनके पति उस ट्रेनमें उनके साथ थे। वे इन्टर क्लासमे थे और उनके साथियोने उनके लिए पूरी बर्थ छोड दी थी। उनमेसे बहुतोको यह ग़लतफहमी थी कि वे अभी विवाह करके लौट रहे है। बहरहाल उनकी जिन्दगी एक रंगीन पैमानेकी तरह थी, जो केवल उन्हीको नही महका रही थी बल्कि आस-पासवालोको भी खुशबूसे तर कर रही थी। वे प्यारके उन क्षणोको जी रहे थे, जिनकी याद बहुतोके जीवनका सम्बल होती है और गाडी उडी जा रही थी खड- खडाती, चिल्लाती, धुआँ उगलती और अन्धकारकी छातीमे प्रकाशका छुरा भोकती।"

छुरेकी उपमा देनेपर यात्री कुछ चौके, पर कथा-सूत्रकी उत्सुकताने उन्हे मौन ही रखा और जज साहब एक क्षण बाहर झाँक फिर बोलने

लगे। उन्होने अव अपनी कोहनी खिडकीकी पुश्तपर टिका ली थी और उनके मोटे ओठ कुछ इस तरह ऐठ रहे थे जिस तरह हमला करनेसे पूर्व मेढक खानेवाला सॉप ऐठता है, जिसके दॉत तो होते है पर उनमे जहर नही होता। उन्होने कहा, "रात हो गई थी और रेलगाडी पूरी गतिसे दौड रही थी। प्राय सभी यात्री ऊँघ रहे थे, पर वह दम्पत्ति अव भी प्रेमालापमे व्यस्त था। पत्नीने कई बार कहा, 'अव सो जाइये।'

"पतिने मुस्कराकर जवाव दिया, 'न जाने क्यो आज नीद भी तुमसे बातें करनेको उत्सुक है।'

"'तो मै सोती हूँ। सपनोमे उससे बाते करूँगी', पत्नी खिल-खिला पडी।

"पति बोला, 'अब जो है वह क्या सपनेसे कुछ भिन्न है। तुम स्वय एक सपना हो।'

"पत्नी हँस पडती, 'स्वप्न एक भावना है, पर मै सत्य हूँ। तुम्हारे सामने बैठी हूँ, तुम मुझे छू सकते हो।'

"और इस तरह बाते चल रही थी। वे प्रेमियोकी निरर्थक बाते थी। आदि और अन्तसे हीन पर जीवनको शक्ति और सुगन्धसे भरने-वाली। लेकिन कुछ भी हो, समयकी शक्ति अजेय है। आखिर उनकी पलके भारी हो आई, परन्तु वे अलसाई झुकी पलके उन दोनोके हृदयको और भी मादकतासे भरने लगी। वे मर्मर-ध्वनिमे फुसफुसाने लगे, तभी अचानक एक झटका लगा, वे बुरी तरह हिल उठे। गाडी जैसे लट-खडाई, शडाक्छू-शडाक्छूका अनवरत उठनेवाला शब्द कही टकराकर भयकर वेगसे चीख उठा। क्षण भरके लिए समय और गतिमे सघर्ष छिड गया। भीषण गडगडाहटके साथ सब कुछ उथल-पुथल होने लगा। यात्री चीखने और जागनेसे पूर्व गिर पडे। देखते-देखते समूचा वातावरण यात्रियोके आर्तनाद और घायलोकी कराहसे भर उठा। अन्धकारने उसकी भीषणताको और भी बढा दिया। उस दम्पत्तिने एक बार गिरते-

गिरते एक दूसरेको पुकारा और फिर उस प्रलयकारी गडगडाहटमे खो गये ।"

हम यात्रियोको लगा कि जैसे वह दुर्घटना अभी घट रही है ; हमारे हृदय धक-धक करने लगे लेकिन सौभाग्यसे वह दिनका समय था। इजीनियरने साहस करके पूछा, "तो गाडी पटरीसे उतर गई और वे दोनो मारे गये।"

"मैने अभी कहा था कि उस दुर्घटनामे सौसे भी ऊपर व्यक्तियोकी जान गई थी, पर वे दोनो उनमे नही थे।"

"क्या ?" इजीनियरने चकित होकर पूछा, "क्या वे वच गये थे ?"

"जी हॉ, वे वच गये थे। पति महोदयके शरीरपर अनेक घाव थे, पर वे आश्चर्यजनक रूपसे साधारण थे, परन्तु उनकी रूपवती पत्नीके घाव असाधारण रूपसे भयकर थे। उनके दाहिने पैरकी हड्डी टूट गई थी और अनेक छोटे-मोटे घावोके अतिरिक्त उनके मुखपर दाहिनी ओर, सिरसे लेकर ठोडीतक एक वडी दरार-सी पड गई थी। इस दुर्घटनाके दो दिन बाद जव पति महोदयको उठने-बैठनेकी आज्ञा मिली, तो सबसे पहले उसने अपनी पत्नीको देखनेकी इच्छा प्रकट की। उसे मालूम हो चुका था कि वह जीवित है और जिलेके बडे अस्पतालमे लेजाई गई है। वह बराबर उससे मिलनेको तडफडा रहा था लेकिन डाक्टरने उसे बताया, 'मित्र, तुम्हे जल्दी नही करनी चाहिये । उनकी हालत अभी ठीक नही है।'

"पति महोदयने पूछा, 'वह होशमे तो है ?'

" 'जी हॉ। अब उन्हे होश आ गया है।'—अन्तिम वाक्य उसने धीरेसे कहा।

" 'तो मुझे वहॉ ले चलिये। मै उसे देखना चाहता हूँ। वह मेरी पत्नी है।'

" 'जानता हूँ मित्र'। डाक्टरने यथाशक्ति अपनेको सयत रखते

हुए कहा, 'यह भी जानता हूँ कि वे अच्छी हो जायँगी। पर .'

"'पर क्या ?' उसने चीखकर पूछा, 'क्या उसके अधिक चोट लगी है ?'

"'यही समझ लीजिये पर वे ठीक हो जायँगी। अवश्य ठीक हो जायँगी।'

"यह सुनते ही उसका बाँध टूट गया और वह सिसकियाँ भरने लगा। डाक्टरने उसे हर तरहसे सान्त्वना दी पर उसे शान्ति नही मिली। डाक्टरने अन्तमे कहा, 'अभी कई दिनतक उसके मुँहकी पट्टी नही खुल सकती। आप देखकर क्या करेगे।'

"वह आँसुओमे बडबडाया, 'डाक्टर, मै उसका मुँह नही, उसे देखना चाहता हूँ। उसे '

"और वह फिर सिसकियाँ भरने लगा और बार-बार अपनी पत्नीका नाम लेने लगा। डाक्टर आखिर मनुष्य था। उसने कोशिश करके उसका तबादला उसी अस्पतालमे करवा दिया जहाँ उसकी पत्नी थी। शर्त यह थी कि वह पत्नीको देख सकेगा परन्तु बोल न सकेगा। उसकी पत्नीको बताया गया था कि उसका पति अभी उठने लायक नही है।"

"आप कल्पना कर सकते है कि जब उसने अपनी घायल पत्नीको देखा होगा, तो उसकी क्या दशा हुई होगी। उसका हृदय भयकर तूफानकी गतिसे धक-धक कर रहा था। वह रह-रहकर वात पीडित रोगीकी तरह काँप उठता था। उसने देखा, उसकी आँखोके आगे धुआँ-सा उठा। उसकी पत्नीका एक पैर काट दिया गया था। उसके पूरे सिर और मुँहपर पट्टियाँ बँधी थी। वह देख नही सकती थी। वह धीरे-धीरे उसके पास पहुँचा। बहुत धीरे-धीरे। दरवाजेसे उसके पलगतक पहुँचनेमे उसे एक युग लग गया। एक युग लम्बे जितने क्षणतक वह खडा रहा फिर फिर पुकारना चाहा, 'विमल .'

"विमल उसकी पत्नीका नाम था लेकिन वह पुकार नही सका।

उसे सहसा चक्कर आ गया और वह वही गिर पडा। शीघ्रतासे उन लोगोने उसे वहाँसे हटा दिया। उसकी पत्नी कुछ नही जानती थी, कुछ जान भी न सकी। होशमे आनेके बादसे वह रह-रहकर फुसफुसा उठती, 'उन्हें... उन्हे बुला दो उन्हे बुला दो, वे कहाँ है? वे कहाँ है?' पर उसका स्वर बडा क्षीण था और संघर्ष प्राय. गतिहीन। अगले दिन उसके पतिने जो एक ही रातमे बूढा हो गया था, बडे डाक्टरसे पूछा, 'क्या आप समझते है, मेरी पत्नी ठीक हो जायेगी? मुझे साफ-साफ बता दीजिये।'

"डाक्टरने सहानुभूतिपूर्ण स्वरमे कहा, 'मिस्टर! आपकी पत्नीके प्राण तो बच जायँगे पर मुझे दुख है, उसका एक पैर और एक आँख जाते रहेगे और मुँह भी कुछ टेढा हो जायेगा।'

"'मुँह भी कुछ टेढा हो जायेगा।' वह फुसफुसाया।

"'मुझे बहुत अफसोस है मिस्टर! बहुत अफसोस है। चार दिन पूर्व आपकी पत्नी अपूर्व सुन्दरी रही होगी पर अब । अब आपको सब्र करना चाहिये।'

"और डाक्टर चला गया। वह कई क्षण आँखे फाडे उसे जाते देखता रहा। बडबडाता रहा—अपूर्व सुन्दरी, सब्र, टेढा मुख, एक पैर, एक आँख, अपूर्व सुन्दरी! उसके साथियोने देखा—घटोतक उसकी यही दशा रही। वह मदोन्मत्तकी तरह हँसा और बडबडाया—अपूर्व सुन्दरी, एक पैर, एक आँख, टेढा मुख, अपूर्व सुन्दरी! फिर सिसकियाँ भरने लगा।

"डाक्टरोके लिए यह एक समस्या हो गई। उन्होने सलाह करके उसे अस्पतालसे मुक्त करनेका निश्चय किया और जब बडे डाक्टर यह निश्चय सुनानेके लिए उसके पास पहुँचे, तो उनके अचरजका ठिकाना नहीं रहा—वह पूर्ण शान्त था। उसने इस निश्चयका स्वागत किया। केवल जानेसे पूर्व एक बार पत्नीको देखनेकी इच्छा प्रकट की।

"और जब वह पत्नीके पास पहुँचा, तो न तो उसका दिल काँपा, न वह गिरा। इसके विपरीत वह दृढतासे उसके बिल्कुल पास जा खडा हुआ। फिर सहसा उसने हाथ उठाया, नर्सने एकदम मना किया। वह रुक गया पर दूसरे ही क्षण उसने फिर हाथ उठाया, फिर गिरा लिया, पर तीसरी बार उसने दोनो उठाये। नर्सने तीव्रतासे रुकनेका इशारा किया, पर इस बार वह नही रुका बल्कि तेजीसे आगे झपटा और उसके दोनो हाथ घायल पत्नीके गलेपर जम गये

"क्षण भरमे उस कमरेकी दुनिया पलट गई। नर्सोका पागलोकी तरह भयसे चिल्लाते हुए भागना, उसका दाँत भीचकर शैतानी शक्तिसे गला दबोचना, पत्नीकी भयानक चीख और और उसके बाद...

"उसके बाद उसने मृत पत्नीका एक सुदीर्घ क्षणतक चुम्बन किया और फिर पसीनेसे तर हाँपते हुए हस्पतालके अधिकारियो और कर्मचारियोकी भीडसे कहा, 'मैं अब कही भी चलनेको तैयार हूँ।"

यहाँ आकर जज महोदय मौन हो गये। उनका मोटा मुख आँसुओ और पसीनेसे तर था, पर हम सब जैसे एक दुःस्वप्नसे जागे हो। हमारे हृदय आतकसे धडक रहे थे और गाडी स्टेशनमे प्रवेश कर रही थी। इस बार भी इजीनियरने साहस किया। एक सुदीर्घ निश्वास छोडकर उसने कहा, "तो यह मामला था जिसका आपको फैसला करना पडा।"

"जी हाँ।" जजने शीघ्रतासे उठते हुए कहा। उन्हे वही उतरना था।

एक सज्जन जो अपेक्षाकृत युवक थे और जिनकी आँखे आँसुओसे भरी थी, बोले, "निस्सन्देह आपने उसे मुक्त कर दिया होगा क्योकि वह वह ।"

परन्तु वह आगे नही बोल सका, उसका गला रुँध गया। जजने उसे देखा और कहा, "अगर आप उस मुकदमेमे जूरी होते तो क्या करते ?"

"निस्सन्देह छोड देते," हममेसे कई एक साथ बोले।

अभाव

ज्यो-ज्यो प्रोफेसर वर्माकी तृष्णा बढती जाती थी, त्यो-त्यो अभावकी रेखा भी गहरी होती जाती थी। रसवादी प्रोफेसर और रस-सागरके बीच एक अभेद्य दीवार थी, जिसके पार वे रसके लहराते समुद्रको देख तो सकते थे, पर उसतक पहुँचना असम्भव था। वह उनके लिए मृगतृष्णा बन गया था। इसी कारण अनजानेमे एक नई प्रवृत्ति उनमे जन्म ले रही थी—वे अपने पास-पडौसके तथा सम्पर्कमे आनेवाले प्रत्येक व्यक्तिका सूक्ष्म अध्ययन करने लगे थे। हर आदमीके साथ सुख-दु ख लगा रहता है इसलिए जैसे ही वे किसीके दु खको खोज निकालते, अनजानेमे ही उनका हृदय उल्लाससे भर उठता। परन्तु दुनिया तो दुनिया है। विचित्रता उसका गुण है। कभी-कभी ऐसा भी हो जाता कि प्रोफेसर किसी व्यक्तिमे दुखका लेशमात्र अश भी न ढूँढ पाते। तब उसको हँसते देखकर उनकी छातीमे छुरियाँ चलने लगती और वे लम्बी साँस खीचकर कहते, 'आह ! कितना सुखी मनुष्य है ?'

इधर इसी तरहकी एक घटनाने उन्हे बेहद त्रस्त कर दिया था। बात यह थी कि अभी-अभी उनके पडौसमे एक नया परिवार आ बसा था। केवल दो व्यक्ति थे, पति और पत्नी। दोनो सुन्दर, सुसस्कृत और मधुर-भाषी। सदा हँसते रहते और जब किसीसे बोलते, तो मुखसे मानो फूल झडते। देखते-देखते वे पडौसकी चर्चाका विषय बन गये। हर एक गोष्ठीमे, चाहे वह पुरुषवर्गकी हो अथवा नारी-वर्गकी, उनकी सज्जनता, विनम्रता और विद्वत्ताकी चर्चा बडी श्रद्धासे की जाती और सबको उनके सुखी जीवनसे ईर्ष्या होने लगती। स्त्रियोकी सभामे उनकी पत्नीकी विशेष सराहना की जाती। युवतियाँ कहती—कैसी सुन्दर है,

साव सेजपर जा सोई। और उसे क्या कम सुख है। मालिक पलकोपर रखे है। दोनो जून दोनो जने हवाखोरीको जा है जैसे सीता-रामकी जोडी हो।"

दूसरी बहू कहती, "पर माँजी, एक बात है, अभी उसकी गोद सूनी है। उमर तो उसकी काफी हो गई।"

माँजी जवाब देती, "बहू, देखनेमे तो लौंडियाँ-सी लगे है। दिन आएँगे तो गोद भी भरेगी। आज-कल बच्चे जरा बडी उमरमे हो है।"

इस तरह जहाँ भी दो औरते मिलती, घरमे, मेले-ठेलेमे, हाट-बाज़ारमे, शादी-गमीमे, वही उनकी चर्चा आप-से-आप अनजाने ही चल पडती। प्रोफेसर वर्माकी पत्नी भी सब बाते सुनती थी। वह स्वय उसकी बडी प्रशसक थी क्योकि उसने अपनी आँखोसे अपनी छतसे सब कुछ देखा था। उनकी छत-से-छत मिलती थी। जब प्रोफेसरकी पत्नी ऊपर आती, तो कभी-कभी पडोसिनसे दो बाते कर लेती थी। पर अभी वे बाते बहुत आगे नही बढी थी। एक तो प्रोफेसरकी पत्नी कम बाते करती थी और करती थी, तो साधारण औरतोकी बातोमे उसे ज्यादा दिलचस्पी नही थी। लडाई है, लडाईकी वजहसे जीना दूभर हो गया है। महँगाई बढ रही है, और महँगाई छोडिये, पैसा है पर चीज नही है। खरीजका न जाने क्या हुआ? दियासलाई, मिट्टीका तेल, चीनी, मसाले, इन सबके अभावमे गिरस्ती बस जजाल बन गई है।

पडोसिन मुस्कराकर कहती, "बहिन! यह तो जीवनका एक रस है। अभाव न हो तो भावको कौन पूछे। अपनी असलियतका पता आदमी-को ऐसे ही जमानेमे चलता है।"

प्रोफेसरकी पत्नी भी अनायास मुस्करा उठती, "सो तो तुम ठीक कहती हो बहिन, पर जीको दुख तो होता ही है।"

"दुख तो बहिन माननेका है। मानो तो दुखका अन्त नही है और मानो तो मौत भी सुखदायी है।"

क्षण भरमे यह सब हो गया और दूसरे क्षण बेबी उसकी गोदमे थी। रूईसे माथेका रक्त पोछती-पोछती वह बोली, "जल्दीसे दूध हो तो ले आओ। न हो तो निरी ब्राण्डी ही दे दूँगी।"

प्रोफेसरकी पत्नी जैसे जागी। कहा, "दूध है, अभी लाती हूँ।"

"और चम्मच भी।"

"जी।"

पत्नी गई और वह ख़ून पोछती रही। माथेपर दाहिनी ओर गहरा घाव बन गया था। उसे 'डीटोल'से साफ किया और फिर धीरे-धीरे उसमे पाउडर भर दिया। फिर पट्टी बॉधने लगी। बेबी पूरी तरह होशमे नही थी। जब दूधमे ब्राण्डी मिलाकर चम्मचसे उसे पिलाई, तो उसने ऑखे खोली। सुन्दर गुलाबी चेहरा सफेद चिट्टा हो गया था। वह मुस्कराई और बोली, "बस बेबी! घबरा गई। अरे शेर तो न जाने कितनी बार कूदते है।"

बेबी ऑखे खोले देखती रही। न हँसी, न रोई और न बोली। प्रोफेसरकी पत्नीकी ऑखे कृतज्ञतासे भर आई। बोली, "आपने   "

"अरे छोडिये भी! बेबीको डाक्टरके पास ले जाना होगा। प्रोफेसर साहब आएँ तो कह दीजिये, और देखिये, बेबीको लिटाए रखना चाहिये। ज़ख्म गहरा है।"

तभी जीनेमे खटखट हुई। प्रोफेसर कालेजसे लौट आये थे। पडोसिनने सामान सँभाला और अपने घर लौट चली। जाते-जाते फिर कहा, "ब्राण्डी छोडे जाती हूँ। जरूरत होगी तो फिर दीजियेगा।"

प्रोफेसरने यह सब सुना और बेबीको ख़ूनसे तर देखा तो घबरा उठे। बोले, "यह क्या हुआ?"

"बेबी मुँडेरसे गिर गई।"

"कहॉ चोट लगी? ज्यादा लगी क्या?"

बार जरूर मना करूँगी, पर वह आती है और ऐसे प्रेमसे बोलती है, जैसे बेबी उसीकी है। बस, मैं बोल भी नही सकती।"

प्रोफेसर और भी चिनचिनाते, "वाहियात! यह सब बन्द होना चाहिये।"

"तो क्या करूँ?"

"मना कर दो!"

"पर जानते हो, इन्हीकी बदोलत बेबी बची है।"

और तब पत्नीकी आँखे भर आती। प्रोफेसर उसे देखकर मुँह फेर लेते। शायद उनका दिल भी उमडता—प्रेमसे या घृणासे, कौन जाने? पर उधरका क्रम उसी तरह चलता रहा। यद्यपि जैसे-जैसे जख्म भर रहा था वैसे-वैसे उसका आना भी कम हो रहा था पर साथ ही प्रेम गहरा हो रहा था।

एक दिन आया, बेबीका घाव भर गया पर अर्द्धचन्द्राकार एक निशान वहाँ बना रहा। चन्द्रमाके कलंककी तरह यह रेखा प्रोफेसरकी पत्नीको अच्छी नही लगी लेकिन पडोसिन मुस्कराकर बोली, "हलो! बेबीके माथेपर चन्द्रमा! शकर बाबाका चन्द्रमा! कैसा सुन्दर, कैसा प्यारा?"

बेबी हँस पडी। सन्ध्या होते-होते उसने छतपरसे आवाज दी, "जरा सुनोगी, बहिन।" प्रोफेसरकी पत्नी शीघ्रतासे आई, "क्या है जी!"

"लो यह क्रीम है। धीरे-धीरे दो उँगलियोसे घावपर मलिये। देखिये ऐसे धीरे-धीरे मालिश कीजिये। निशान मिटा नही, तो इतना फीका पड जायेगा कि दूरसे कोई जान न सकेगा—चन्द्रमामे कलक है।"

प्रोफेसरकी पत्नीने कृतकृत्य होकर कहा, "आप बहुत अच्छी है।"

"यानी बहुत ख़राब!"

पत्नी धकसे रह गई, "जी! नही, नही जी।"

पडोसिन खिलखिलाकर हँसी, "आप तो डर गई। पर कहा करते है कि किसीको यह कहना कि तुम बहुत अच्छे हो ऐसा ही है जैसे यह कहना

निकेतनके वने सुन्दर और रंगीन फल रक्खे हुए थे। लाल रगके खूबसूरत फूलदानोमे रक्खे हुए ताजे फूलोके गुलदस्तोमे भीनी-भीनी महक आ रही थी। आदमी भी ज्यादा नही थे। कुल मिलाकर पाँच पुरुष, चार स्त्रियाँ और चार वच्चे थे। एक पारिवारिक परिचय-गोष्ठी थी और सव छुट्टीके 'मूड'मे थे। आनन्द-विनोद और मधुर हास्यका वातावरण था जैसे उनके लिए दुनियामे न कही पीडा थी, न विषाद। चारो ओर बस प्रमोद ही प्रमोद था। घरमे हँसी थी, आसमान हँसता था, हवा हँसती थी और उनके बीचमे वसा हुआ मानव भी हँसता था।

देखा, एक कोनेमे फूलोका अस्त-व्यस्त ढेर लगा है। एक मित्र वोल उठे, "जिधर देखो फूल, मानो आप लोग मनुष्य नही फूल है।" पति-देव वडे जोरसे हँसे, "अजी पूछिये मत! इन्होने तो आज मुझे फूल ही समझ लिया था।" दूसरे मित्र हँसे, "कुशल मनाइये, इन्होने आपको मसल नही दिया।"

एक नवयुवती वोली, "अजी, फूल नही फूलोका देवता समझा होगा।"

पत्नीने मुस्कराकर कहा, "अजी, क्या उपमा दी आपने! इनमे तो पत्थरके देवता कही अच्छे।"

एक कहाकहा लगा। पतिने हँसते-हँसते कहा, "क्यो नही। बेचारोपर कितना ही अत्याचार कर लो वे वोलेगे थोडे ही। पर भाई! मुझसे तो यह सव सहा नही जाता। पहले ठडे पानीमे नहाइये। फिर पूजा करिये। फिर पूजा करवाइये। यह खाइये, देवीका प्रसाद, यह देवताका, यह आपकी दासीका, यह टीका लगवाइये, लीजिये मेरी माँगमे सिन्दूर भर दीजिये। भला कोई अन्त है इस पूजाका! बाप रे! पत्थर हीकी हिम्मत है!"

और तब ऐसा कहकहा लगा कि हँसते-हँसते सबके पेटमे वल पड गये। आखोमे आसू भर आये, पर क्या मजाल वह झेपी हो। उसी तरह

"न जाने कबसे रक्खे थे। न कोई छूता था, न खेलता था। देखते-देखते आँखे थक गई थी। आज बेबीने उसी थकानको दूर किया है।'

और कहकर उन्होने फिर बेबीको जोरसे चूमा और फिर उतार-उतारकर सारे खिलौने उसके सामने डालने लगी, "खेलो और तोडो, मेरी बच्ची! खूब तोडो। आखिर इनका अन्त आना ही चाहिये, आना ही चाहिये।"

जैसे कमरेमे निस्तब्धता छा गई। अपलक-अवाक् सब उस नारीको देखते रह गये। वह अब भी उसी तरह हँस रही थी, हँसे जा रही थी पर उस हँसीके पीछे पीडाका जो अदृश्य सागर लहरा रहा था वह आज प्रगट हो गया था। प्रोफेसरने उसे स्पष्ट देखा। यह उनकी विजय थी। उनके हर्षका अवसर था, पर न जाने क्यो वे एक अनिर्वचनीय सहानुभूतिसे भर उठे और मन-ही-मन उन्होने कहा, 'इतने बडे अभावको हृदयमे छिपाकर भी जो इतना खुलकर हँस सकता है उस व्यक्तिको मै बार-बार प्रणाम करता हूँ।'

१९४६]

आटा गुँध सकते हैं । माँ-बापके पास ही बहू-बेटे और भाई-बहिन आजादीके साथ सो सकते हैं। जहाँतक सोचने-विचारनेका सम्बन्ध है, यह बात उनकी बुद्धिसे परे नही है कि बस्तीकी सबसे खूबसूरत भगिन कौन है और उसकी दोस्ती किन-किन लोगोसे है ?

"लेकिन आप यदि मेरा विरोध करनेको तैयार हैं, यद्यपि मेरा विश्वास है कि आप है नही, पर मै कल्पना कर लेता हूँ कि आप कहते हैं, 'याज्ञिक, क्या ये मानव नामधारी जीव, जिन्होने दुनियाकी सफाईका ठेका लिया है अपनी सफाई और भलाईके बारेमे नही सोचते ?'

"मै कहता हूँ—सोचते है। आपका ऐश्वर्य देखकर उनके दिलमे हसरत और उमगे पैदा होती है। उनके दिमागमे जोरसे गडगडाहट उठती है और जोशमे आकर वे कभी-कभी तो दारूकी भरी बोतल खाली कर देते है और फिर घर (यदि आप उन कोठरियोको घर कहे) जाकर सीले फर्शपर पडे हुए किसी टामलोटमे (जिसे आपने रद्दी करके कूडेपर डाल दिया था,) या टीनके डिब्बेमे या कहिये मिट्टीकी हाँडीमे जोरसे ठोकर मारते है, जो या तो दीवारसे टकराकर बज उठती है या फूट जाती है। यहीतक नही, इसके बाद वे अपनी घरवाली या बहिन, या माँ, या बेटी (मतलब स्त्रीसे है) या जो कुछ भी है उसे दस-पाँच उलटी-सीधी सुनाते है। इस उलटी-सीधीकी व्याख्या करनेका साहस मुझमे नही है पर सकेतके लिए मै कह सकता हूँ, वह गन्दी गालियोका नगा रूप होता है। गालीके बाद मार-पीट हो जाना एक मामूली-सी बात है।

"यह पुरुषोके सोचनेकी बात है । स्त्री-वर्ग कुछ अलग सोचता है और कुछ कम भी सोचता है क्योकि स्त्रियोको सदा और सब जगह कुछ न कुछ रियायते मिली होती है। उन्हे माँ जो बनना पडता है। आप चौके होगे कि ऐसी बस्तीमे रहने वाली भी क्या माँ होती होगी। पहिले मुझे भी शका हुआ करती थी। मै सोचा करता था कि मेरी जातिको छोडकर यानी हिन्दुस्तानियोको छोडकर (यद्यपि उस बस्तीवाले भी हिन्दुस्तानी

कहा था, अब्बासे जाकर कह दो कि उस लडकीसे वे खुद निकाह पढ़ा लें। मैं तो चमेली भगिनसे शादी कर लूँगा।'

"आप सोचिये यह कितनी बडी रियायत है। शेख उमरका लड़का क्यो? लाला उजागरमलने ठीक दोपहरी और खुली गलीमे प्यारी भगिनके साथ जो कुछ किया, वह मेरी आँखोने देखा था। और यही क्यो? आपने कई भगिनोकी गोदमे जो धूपसे चमकते हुए बच्चे देखे होगे वे क्या इन रियायतोकी कहानी नही सुनाते?

"अलीगढसे आगरा जानेके लिए जब मै मोटरमे सवार हुआ तो कुछ भगिने मेरे पाससे गुजर गई। उसी मोटरमे एक और महाशय मेरे पास बैठे थे। वेश-भूपासे वे आर्य-समाजी जान पडते थे। मुझसे बोले, 'आपने इनको देखा?'

'किनको?' मैने पूछा था।

'इन्ही भगिनोको।'

'हॉ, देखा है।'

'इनकी गोदियोमे कितने खूबसूरत बच्चे थे?'

मै इस बातका जवाब न दे सका क्योकि उस वक्त इतनी बारीकीसे देखनेका अवसर मेरे पास नही था, पर वे महाशय फिर बोले, 'जानते हो ये बच्चे किनके है?'

'किनके है? जिनकी गोदियोमे है उनके ही है!'

'नही।' उन महाशयकी मुद्रा जरा कठोर हो उठी थी, 'नही महोदय! ये बच्चे इनके नही है, ये बच्चे तो हमारे है।'

"और कहते-कहते उन महाशयकी ऑखे लाल हो आई थी। मुखकी मुद्रा कमानकी तरह खिच गई थी। उन महाशयको वही छोड़कर मै कहूँगा कि अलीगढ और इस जगह जहाँ मै रहता हूँ सैकडो मीलका अन्तर है लेकिन इन रियायतोकी कहानी सब जगह एकसी है। सभी जगह मानव है और सभी जगह स्वर्ग और नरक! इनसे डरनेकी जरूरत

"उस समय रात थी। कोठरीके एक आलेमें किरासिन तेलकी ढिबिया मुँह फाडे काली रोशनी उगल रही थी और दूर कही बस्तीसे गाली-गलौज की तीखी आवाज कोठरीकी दीवारोंसे आ टकराती थी लेकिन चन्दोका ध्यान इन दोनो बातोकी ओर नही था। वह तो सोच रही थी दो वर्ष पहिलेकी एक बात और सोचकर जैसे सिरसे पैरतक सिहर उठती थी। न जाने उसमे क्या था कि इस बस्तीमे रहनेवाली औरतमे भी सोचनेका माद्दा पैदा हो गया था।

"चन्दो वैसे बस्तीकी खूबसूरत और रगीन औरतोमेसे थी, दो वर्ष पहिले भी वह खूबसूरत और रगीन थी। उसे याद आ रहा था कि मायके-की बस्तीके सारे भगी भाई होकर भी उसपर फिदा थे। पाससे गुजरती तो तरह-तरहके टूटे-फूटे शृगारिकतासे भरे पद गुन-गुनाने लगते थे। इन्हे सुनकर चन्दोको कभी गुस्सा नही आया। उल्टे एक सिहरन-सी तन-बदनमे जाग उठती थी परन्तु इस बस्तीकी बात क्या? वह जो शरीफोकी बस्ती है, जहाँ वह रोज ही शरीफोका मैला उठाने जाया करती थी, वहाँके शरीफजादे भी उसपर आँख गडा देते थे। शेख उमरके लडके जैसे मनचले उससे शादी करनेको भी तैयार थे पर वह क्या होनेवाली बात थी, शादीसे जो कुछ मुराद उनकी होती थी, वह तो चन्दो भी जानती थी।

"दिन निकलते-निकलते वह झाड-टोकरी उठाकर चलती और जब सूरज खूब ऊँचा चढ आता, तो थककर घर लौट आती। आते-आते वह सारी बातोको जो उसने सुनी थी सोच जाती। वे बादे उसके कलेजेपर रखे थे, जिनमे उसे कुछ आनोसे लेकर कानोके बुन्देतक भेट किये गये थे। भेटका कारण एक ही था कि वह रगकी चिट्टी और चालकी चचल थी। आँखे भी उसकी बडी और लम्बी थी।

"लेकिन चन्दो थी कि अभी पकड मे नही आई। एक बार एक लडके-ने घरमे ही रास्ता रोक लिया तो वह बोल उठी—'लाला! बडी माँजीसे

उठ बैठ रही थी। उसका दिल भर आया। पानीकी दो बूदे खाटपर टपक पडी। उन्हीके साथ याद आ गई उसे वह पुरानी बात। उस दिन रम्मूसे काफी तेज लडाई हो चुकी थी। रम्मूने इतना मारा था कि कमरमे नील पड गये थे और उसी दिन लालाने कहा था—'चन्दो। मुह-मॉगा वर दूगा।'

चन्दो जैसे कॉपी थी।

'बोल।'

और चन्दोको याद आया कि कल इसी घरकी औरते गीत गा रही थी —

"चढती जवानीका यार छोरा वामनका

ताली देवै था जी छोरा वामनका"

सोचकर चन्दो बोली नही थी। चुपचाप लालाकी ओर देख भर लिया था। और फिर .।

"चन्दोने जोरसे रोकर पट्टीमे सिर दे मारा। बच्चा चौककर कॉप उठा। उसने ऑखे खोल दी, कैसी बडी-बडी ऑखे, सुआ जैसी नाक, ऊँचा माथा, धूप जैसा रग! चौककर चन्दोने उसे उठा लिया। गोदमे भरकर और भी जोरसे रो उठी जैसे दिल टुकडे-टुकडे हो रहा था, जैसे कोई बच्चेको उससे छीनकर ले जा रहा था, फिर क्षणभर बाद फुस-फुसा उठी, 'तुझे! तुझे तो नरम-नरम गद्दोपर सोना चाहिए था, डाक्टर हकीम तुझे देखने आते, गोरी-गोरी नर्से तेरी देख-भाल करती। उस ऊँची अटारी-के बाहर खडे होकर लोग पूछते, 'सेठजी, बच्चा कैसा है?'

"आप कहेगे यह कमीनी भगिन क्या सोच रही थी? मै कहता हूँ इसमे उसका कसूर ही क्या था? उसे अपने बापका ठीक पता नही था। न जाने कहॉसे उसकी मॉने उसे पाया था और उसे अपने बच्चेके बापपर भी शका थी। रम्मू क्या उसका बाप था? हर्गिज नही! इस बच्चेके बाप तो लाला थे। वही जो मायाकी शैयापर सोते है, मायाकी थालियोमे भोजन करते है, माया जिनके पॉव पखारती है ।

चन्दो फिर काँपी पर साहस करके रुआँसी-सी बोली, 'माँजी हम गरीब है।'

'चल हट!'—माँजीने दुत्कारा, 'इतना मिलता है तो भी गरीब-की गरीब! ओछे तो सदा ओछे ही रहते है न!'

चन्दो खूनका घूट पी गई। और माँजी उठकर एक रजाई ले आई, 'बच्चेको इसमे लपेट ले।'

चन्दोने रजाई ली और रम ली। लौट चली। मकानका नक्शा उसके दिमागमे उतर चुका था और एक अजीब घबराहटसे उसे कँपकँपी आ रही थी।

ड्योढीपर अचानक लाला मिल गये। दोनोकी आँखे मिली, दोनो चौंके और काँप उठे।

'तू रातको क्यों आई?' लाला बोले।

किसी तरह बोली, 'बच्चा मर रहा है .'

और आगे वाणीने साथ नही दिया पर मनने कहा, तुम देखो यह तुम्हारा बच्चा है, यह दवाके बिना, पथ्यके बिना, देख-भालके बिना मर रहा है। इसे बचा लो। और यही सारे बिना वाणीके शब्द उसके दिमागपर हथौडेकी तरह पडे। वह काँपी, थर्रायी और फिर शीघ्रतासे ड्योढी पार करके भाग चली। बच्चेको उसने छातीसे चिपका लिया। रजाई उसने फेक दी। रमकी शीशी दीवारमे दे मारी और आँधी-सी बस्तीकी ओर चल दी। मानो कही मनकी बात सुनकर दिल दुत्कार उठा था, 'इसका बच्चा, इस कमीनेका? नही, बच्चा इसका नही हो सकता। इसे तो मैंने रक्त दिया है। मैंने जीवन, स्पन्दन और चेतना दी है। मैंने प्राण दिये है। मै इसकी माँ हूँ, बच्चा मेरा है, बच्चा माँका है।'

और यही तर्क चन्दो भगिनकी चालमे गति बनकर प्रवेश कर गया। वह बढती चली गई, बढती चली गई कि सहसा रम्मूने उसे देख लिया।

माँ-बाप

जैसे ही ताँगा डाकघरके पास आया, एक लडका लपककर उसमे आ बैठा। वह लगभग बारह-तेरह वर्षका होगा। उसका शरीर बहुत गन्दा था, और कपड़े बिलकुल फटे थे। ताँगेवालेने एक निगाह उसपर डालकर पूछा, "कहाँ था बे, तू अब तक?"

"खटीकोके बासमे गया था," लडका तलखीसे बोला।

"बासमे?"

"हाँ।"

"फत्ती आ गई?"

"फातिमा?"

"हाँ।"

"आगई।"

"मुझे पूछ रही थी?"

"तुझे?"

"हाँ-हाँ, गधे! क्या वह मुझे पूछ रही थी?"

लडका शरारतसे मुसकराया। बोला, "पूछ रही थी, कि वह कहाँका रहनेवाला है।"

"सच?"

"सच।"

"और कुछ पूछा था?"

"नही तो।"

"पूछा होगा, गधे!"

"तेरी कसम!"

"बशीर मियाँ मान गये है!"

"सच?"

"हाँ!"

"क्या फैसला करेंगे?"

"बशीर मियाँ फत्तीको तलाक दे देंगे!"

"नही, बे!"

"सच!"

"खा मेरी कसम!"

"तेरी कसम! बुढिया भी मान गई है!"

तांगेवालेने गहरी साँस खीची। सवारीने फिर अचरजमे उसकी ओर देखा। ताँगेवालेके नेत्र चमक रहे थे। पसीना पोछकर उसने घोडेकी रास ढीली कर दी।

शहर पीछे छूट गया। धूपकी तेजीमे हवाका एक-आध झोका मुरझाये हुए प्राणोमे जीवन डाल जाता था। वह बदसूरत लडका बडी लापरवाहीसे सिनेमाके इश्किया गीतकी एक कडी गुनगुनाने लगा था। तांगेवाला किसी मीठी कल्पनामे डूबा हुआ था। और ताँगा आगे बढ रहा था। सवारी चुपचाप दोनो टाँग फैलाये पिछली बर्थपर बिखरी पडी थी। कभी-कभी आँख उठाकर वह दोनोपर एक नजर डाल लेती थी।

स्टेशन अब दूर नही था। सहसा ताँगेवालेको फिर कुछ याद आ गया। पूछा, "फत्तीके कोई बच्चा है?"

लडकेने गाना रोककर कहा, "हाँ, एक लडका है।"

"बुढिया क्या कह रही थी?"

"लडकेके बारेमे?"

"हा-हाँ!"

"लडका बशीर मियाका है! उसीको मिलेगा!"

"यही फैसला हुआ है?"

लडका हँस पडा। बोला, "तूने तो फिजूल ही मेहनत की! बच्चा बशीर मियाँको मिलेगा!"

"उस पाजीने क्या किया है?"

"उसने काजीके सामने फत्तीसे निकाह किया है, और वह इसी शर्तपर तलाक देनेको राजी हुआ है, कि लडका उसीको मिलेगा!"

"पाजी! गधा! बेईमान!"

ताँगेवाला क्रोधमे कुछ और कहता, परन्तु ताँगा स्टेशनके कपाउण्डमे प्रवेश कर चुका था, और कई कुली एक साथ ताँगेपर झपट पडे थे।

सवारी चुपचाप उतरी, पैसे दिये, और हैण्डबैग उठाकर रेलके पुलपर गायब हो गई। जाते-जाते एक बार उसने उन दोनोको देख भर लिया, परन्तु कहा कुछ नही।

अब तागेवालेने निहायत तलखीसे लडकेको पुकारा, जो उचककर पानवालेकी दुकानपर लटके हुये रस्सेसे बीडी सुलगा रहा था। कहा, "चल, बे, लौंडे! पुलपरसे सवारी ला!" फिर वह तागेको वही छोडकर मुसाफिरखानेमे बैठे हुए दूसरे ताँगेवालोमे जा बैठा, जो बडी बेतकल्लुफीसे दर्दे-जिगरकी कहानियाँ सुना रहे थे।

उसी सन्ध्याको ताँगेवालेने, जिसका नाम अहमद था, फातिमाकी माके पास जाकर चुनौती दे दी, "फैसला नही होने दूगा।"

बुढिया अचरज और गुस्सेसे बोली, "कौन है तू?"

"फत्तीके सामने बताऊँगा!" अहमदने तलखीसे जवाब दिया।

"अच्छा, अच्छा बता देना! बहुत देखे है मैने तेरे जैसे!"

"हूँ!" अहमद ऐठकर रह गया।

बुढिया चीखती रही, "निकल पडते है घरसे बाहर कि किसीकी इज्जत उतार लेगे! अपनी तो धोये बैठे है! दूसरोकी भी साफ कर देना चाहते है!"

"इज्जत-विज्जत मै कुछ नही जानता! बच्चा बशीर नही ले सकता!"

"तलाक मिल गया?"

"हाँ।"

"वह बच्चेको ले गया?

'हाँ।"

"बदमाश कहीं का! मुफ्तमें औलादवाला बन गया!"

उसके दाँत कटकटाने लगे, नसें ऐंठ चलीं। अगर वज़ीर सामने होता, तो शायद वह उसे काट डालता। लेकिन सामने तो बुढ़िया थी। ऊपर आसमानसे रातका आगमन होने लगा था। धीरे-धीरे अंधकार धरतीपर उतर रहा था। बुढ़िया मिट्टीकी तेलकी ढिबरी जलाकर आलेमें रख गई। कुछ देरतक वह उस ढिबरीको, जो काली रोशनीके बादल बना रही थी, देखता रहा। फिर न जाने क्या सोचकर बोल उठा,-"फत्ती कहाँ है?"

"अन्दर पड़ी है।"

"एक बात कहूँ?

'कह।"

बहुत धीरे-से वह बोला, 'फातिमाका निकाह मुझसे पढ़वा दे।"

"तुझसे?"

"हाँ, वह मुझे चाहती है।"

'तूने फातिमासे पूछा था?'

"वह तो शर्मसे हाँ मुझे चाहती है।'

बुढ़िया पूरी साध थी। बोली, यह तो मैं जानती हूँ, पर तू पूछकर देख न! दाढ़ीमियाँ नाक रगड़ गये हैं।"

"सच?'

'हाँ।"

'क्या ताकत निबाह पायेगा? सवेरे खाना मिला तो शामका ठिकाना नहीं।'

'यही तो मैंने कह दी थी।'

गोदीमे सिर रखकर जुबक उठी। बुढियाने प्यारसे उसे हाथोमे थाम लिया। फिर धीरेसे पूछा, "सच बता, बच्चा अहमदका है ?"

फातिमाने फिर सिर उठाया। माँकी ओर देखा। फिर ज़ोर-ज़ोरसे रो उठी।

बुढियाने धीरे-धीरे उसे लिटा दिया। कहा, "कल सवेरे ही निकाह पढवा दूगी। रोती क्यो है ? तू जीती रही तो गफूर जैसे कई बच्चे तुझे मिलेगे।"

अगले दिन सवेरे जब सूरजने पूरबके समुद्रसे सिर निकाला, तो फातिमाने भी आँखे खोली। उसका चेहरा अब भी मुरझा रहा था। कलकी बात उसके दिलमे ताजा थी। गफूरका रोता हुआ चेहरा उसकी छातीमें कसक पैदा कर रहा था, और वह रह-रहकर चौक उठती थी, 'गफूर!' और गफूरकी जैसे आवाज आती, 'अम्मी !' फिर वही 'गफूर!' . 'अम्मी !' और तब वह मुँह मे आँचल ठूसकर फफक-फफककर रो उठी।

लेकिन इन बातोके ऊपर एक उम्मीद थी, जो घावोपर मरहमका काम करती थी। इसीलिए वह उमडते हुए आँसुओको पी जाती थी, और छातीपर पत्थर रखकर धडकते हुए दिलको थाम लेती थी। यह उम्मीद अहमदकी थी। वह जानती थी, कि कैसे धीरे-धीरे जब वह बशीर मियाँसे दूर हटती जा रही थी, तो अहमद उसके नजदीक आता जा रहा था। होनेको तो कालू मियाँ, नत्थे खाँ और रमजान मियाँ भी थे। परन्तु अहमदकी-सी बात उनमे नही थी। इसीलिए वह एक दिन अपनेको उसके सामने अर्पण कर बैठी थी। उसी समर्पणका फल था गफूर, जिसे दुनिया बशीर मियाँका बेटा समझती थी।

बशीर मियाँका ध्यान आते ही फातिमा सिरसे पैरतक सिहर उठी। लगा, जैसे वह नफरत और गुस्सेसे तडप उठेगी, जैसे तभी बाहर किसीने जोरसे पुकारा, "फत्तोकी अम्मा !"

बुढियाने उसे देखा, तो लपककर उठा लिया। छातीसे चिपकाकर बोली—"अहमद कहाँ है ?"

"जेलमे।"

"जेलमे ?"

"जेलमे !" कोठरीमे फातिमा फुसफुसाई और दोनो हाथोसे छातीको दबा लिया।

ताँगेवाले लडकेने कहा—"मरनेसे पहिले वशीर मियाँने मुझसे कहा था कि. "

"क्या कहा था ?"

"कहा था कि गफूरको फत्तीको सौप देना। कहना गफूरका बाप कौन है, यह हर कोई नही जानता, परन्तु उसकी माँ फातिमा है, यह सब जानते है! इसीलिए गफूरको वही अपने पास रखे, जिससे वह निकाह करेगी, अब वही उसका बाप कहलावेगा।"

बुढियाको कुछ सूझ नही पडा। उसे खुशी हुई या दुख, यह बताना भी प्राय असभव था। वह धीरे-धीरे वहाँसे हटकर फातिमाकी कोठरीमे चली गई। बोली, "ले, गफूर आ गया है।"

फातिमाने दोनो हाथ फैला दिये। बच्चा लपककर गोदीमे चिपक गया। फातिमाकी आँखोसे आँसू बहने लगे। उसने बच्चेको दोनो हाथोसे छातीमे दबा लिया, और फिर शून्यमे खो चली।

बुढिया फिर बोली, "अहमदके आनेकी कोई उम्मेद नही है।"

फातिमाने सुन लिया। सुनकर उसे लगा, अम्मा यह नही कहती, तो क्या हो जाता? गफूरको छातीसे चिपकाये हुए हथौडेकी यह चोट उसे अच्छी नही लगी। उसकी आँखोमे बेतहाशा आँसू उमड आये, और वह माँकी ओर देखती ही रह गई।

तभी अचरजसे भर कर उन दोनोने देखा, अपना भारी भरकम बदन

ताँगेवाला

सात दिन बाद आज फिर अहमदने ताँगा जोडा। जाने लगा तो एक बार अन्दर आया, देखा—बीबी उसी तरह हमीदको कन्धेसे चिपकाये घूम रही है। कुछ क्षण वह चुपचाप खडा देखता रहा, फिर बोला, 'कुछ हल्का पडा ?'

'नही।'

फिर सन्नाटा छा गया, परन्तु जब वह बाहर जानेको मुडा तो बीबीने कहा, 'हकीमके होते आना।'

'अच्छा।'

'और देखना, बचकर रहना।

अहमदकी आवाज नलखाहटसे भर गयी, बोला, 'मै बेवकूफ नहीं हूँ।'

बीबीने कुछ जवाब नही दिया। उसी तरह घूमती रही। वह चुपचाप बाहर चला आया। ताँगा तैय्यार था, घोडा उसे देखकर हिनहिनाया। उसने अपने बडे लडकेसे जो तागामे बैठा था, कहा, 'चल बे गफूर, नीचे उतर।'

गफूर नीचे उतर गया तो फिर कहा, 'घरमे रहना, समझा ?'

'अच्छा।'

'अन्दरसे कुडी दे लेना।'

'अच्छा।'

ताँगा मुडा। अहमदने एक बार फिर गफरको देखा। ओंठ कुछ कहनेको फडफडाये पर वह बोला नही, घोडेको टिटकारी दी और आगे बढ गया। उसने गली पार की। सामने सदाकी जानी पहचानी सडक

बाबू लोग एक और तॉगेमे बैठकर दरियागज चले गये है। वह अचकचाया—वे मेरे तॉगेमे क्यो नही बैठे? उन्होने मुझे मना क्यो किया? क्या उसने पैसे कम लिये है? पर मैंने तो पैसोका जिकर भी नही किया था, तो? विचारोकी उलझनमे तॉगेकी गति धीमी पड गयी। सिपाही चिल्लाया, 'क्या देखता है बे, जल्दी कर।' वह चौका। एक बार सिपाहीको देखा और रास ढीली करके टिटकारी दी, 'चलो बेटा!'

पर आवाजमे तलखी नही थी, दर्द था। वह दूरतक उसी दर्दमे बढा चला गया। अनेक व्यक्ति पास आकर चले गये, पर उसने पूछा तक नही कि कहाँ चलोगे? उसके मनमे कुछ कडवी बाते उठ रही थी, पर वह उन्हे किसीसे कह नही सकता था। इसीलिए उनका धुआँ मस्तिष्कमे घुट रहा था। उसने फिर आँखे उठायी, देखा—वही शहर है। वे ही दूकाने, ऊँची-नीची और एक दूसरीसे सटी हुई। वे ही आदमी है। वे ही युवक-युवतियाँ सुन्दर और फैशनपरस्त, पर न जाने आज उनकी आँखोमे क्या है। वे एक दूसरेको ऐसे देखते है, जैसे सदियोके दुश्मन है। अभी कुछ दिन बीते यहाँ कन्धेसे कन्धा भिडता था, सवारियाँ पुकारती थी और सदाके बदनाम तॉगेवाले मुस्कराकर आगे बढ जाते थे। फिर एक दिन उसी बाजारमे ऐसी कडवाहट फैली कि राह चलना कठिन हो गया। सहसा कोई चिल्ला उठता, शोर मचता—छुरा चल गया।

जनता पागलोकी तरह इधर-उधर भागती। पुलिस आती और जिनको पकड सकती, पकड ले जाती। आस-पासके दूकानदार, दफ्तरसे लौटते हुए बाबू, विद्यार्थी और बैंकके चपरासी, वे सब अपने भाग्यको ठोक लेते। जो बचते वे सोचते—कौन जाने, कल हमारी बारी आ सकती है। अधिकारी कहते—हम बेबस है बदमाश जनतामे है। जनताको हमसे सहयोग करना चाहिये। पर अधिकारियोकी दृष्टिमे जो बदमाश थे, जनता उन्हे धर्म और जातिका रक्षक मानती थी। यह गन्दा और न समाप्त होनेवाला

था, आँखे खुल रही थी, पर मस्तिष्क सो रहा था। शीघ्रतासे पुकार उठा, 'बाबूजी! आइए, दो रुपये दीजिए।'

'नही।'

'डेढ रुपया!'

दूसरा तॉगा पास आ गया था। आखोसे ऑखे मिली। अहमद कॉप उठा जैसे किसीने उसके पेटमे छुरा भोक दिया हो। वह एक गहरे और कडवे दर्दसे तिलमिलाया। नसे ऐठने लगी। जीमे आया, तॉगेमे आग लगा दे और

तभी दिमागमे एक झटका लगा। ऑखोके आगे तिरमिरारे उठने लगे। उन्हीमे उसने अपने वेहोश बच्चे और भग्न-हृदया बीबीको देखा। वह तूफानके पत्तेकी तरह बेबस फिर मुडा। दूसरे कोनेपर कुछ लोग खडे थे। पास जाकर उसने पूछा, 'कहाँ जायँगे बाबूजी?'

'मोरी गेट।'

'तो आइए।'

उसने प्रसन्न मन तॉगा मोडा। बाबूजीने उसे ध्यानसे देखा, फिर न जाने क्या हुआ, मुह फेर लिया। अहमद बोला—'आइए न!'

'नही।'

बाबूजी!'

'कह दिया नही।'

'बाबूजी यकीन रखिये, तॉगेवाला पहिले तॉगेवाला है।'

सुनकर बाबूजी चौंके। अहमदने उसी व्यग्रतासे कहा, 'बाबूजी! अब तक बोहनी भी नही की है। आइए।'

बाबूजीने उसे फिर देखा। वह फिर बोला, 'बाबूजी!'

बाबूजी उसकी ओर बढे, परन्तु तभी उनके साथीने कहा—'भइया! जमाना बडा खराब है। जानबूझकर मौतके मुहमे हाथ देना अच्छा नही है।' बात यद्यपि धीमे स्वरमे कही गई थी, परन्तु अहमदने सुन ली। वह

हिन्दूका तॉगा ढूढता था। मुस्लिम वस्तीवाले मुसलमान भी शायद ऐसा करते होगे।'

युवक बोल उठा, 'जरूर करते होगे।'

'पर बाबूजी! हम लोगोका इन बातोसे क्या मतलब है। हम तो मजदूर है। ऐसा करेगे तो खायगे कहॉ से। पहिले पेट है, फिर कुछ और।'

युवकने पूछा, 'तॉगा तुम्हारा है?'

अहमद बोला, 'नही बाबूजी! मैं तो नौकर हूँ। एक दिन खाली जाता है, तो पेटपर चोट लगती है। अब तो हफ्ते बीत जाते हैं। सच कहता हूँ, इस हफ्तेका राशन नही ला सका। छोटा बच्चा बुखारमे भुन रहा है। उसकी दवाईका कोई ठिकाना नही। न जाने क्या होनेवाला है। पहिले तो कभी ऐसा नही होता था।'

दूसरे युवकने, जो अबतक चुपचाप बैठा था, सहानुभूतिसे भरकर कहा, 'सब ठीक होगा, मेरे दोस्त! इस शैतानियतमेसे ही भलाई पैदा होगी और तब तुम्हारा राज होगा।'

अहमद हँसा, 'हमारा राज! यूनियनवाले भी यही कहते है। पर बाबजी! काम तो हम तब भी इसी तरह करेगे?'

युवक बोला, 'काम छोड दोगे तो राज कैसे करोगे? जब काम करनेवालोका राज्य होगा तभी शान्ति होगी। जो निठल्ले हैं वे लडनेके अलावा और कुछ नही सोच सकते।'

अहमदको ये बाते बडी अच्छी लगी। सहसा उसके जीमे उठा—मैं इनसे पैसे नही लगा।

तभी युवक बोल उठा, 'तॉगा रोको भाई! हम यही उतरेगे।' सामने कनाट सरकस था। युवक उतरे और पैसे चुकाकर एक ओर चले गये। पैसे ठीक थे। अहमदने मुट्ठी मीचकर उनकी गरमी महसूस की, फिर शीघ्रतासे अड्डेकी ओर मुडा। पुकारा, 'अजमेरी गेट, हौज काजी!'

'हमीदका क्या हाल है?'

'पडा है।'

उसने जल्दीसे घोडा खोला। उसके वदनपर हाथ फेरा। घोडा हिन-हिनाया। अहमदने धीरेसे कहा, 'कोई फिकर नही, एक दिन हम जीतेगे।'

तभी दरवाजेपर आहट हुई, 'गफूर!'

अहमदका माथा ठनका। धीरेसे कहा, 'मै हूँ।'

'कहाँ थे अब तक, देखो तो!'

'क्या है।'

'हमीद?'

घोडेको वही छोडकर वह अन्दर गया। देखा—बीबीकी आँखे रोते-रोते लाल हो रही है। उसका रहा सहा दम टूटने लगा, 'क्या हाल है?'

'आँख नही खोलता। चुप पडा है।'

उसने हाथ लगाया और झटकेसे पीछे हटा लिया जैसे जलता तवा हो। उसकी नस-नस चीख उठी। बीबी बोली, 'हकीमके पास गये थे?'

'नही।'

'नही? सारा दिन क्या किया तुमने? मारनेकी सोच ली है, तो वैसे ही गला घोट दो। ऐसे भी क्या बाप!'

गुस्सेसे उसकी नसे तिडकी। बडे जोरका झटका लगा। बोला, 'अब जाऊं?'

'अब जाऊं! करफ्यू नही लगेगा क्या? तुम्हे बिलकुल फिकर नही है। तुम ऐसे क्यो हो गये? तुम!'

और वह रो पडी। खूनका घूट पीकर अहमद बोला, 'दौडकर जाता हूँ।'

और वह मुडकर तेजीसे बाहिर निकल गया। वह होशमे नही था।

तॉगेमे नही बैठा। उन्हे डर था, मै उन्हे मरवा डालूगा। हजूर, सिर्फ दो वारके चक्करमे दस आने मिले है।'

हकीम सा'व अन्दर चले गये। कुछ क्षण वाद लौटे तो हाथमें एक पुडिया थी। बोले, 'लो, चार गोलियाँ है। दो-दो घटेपर देना। खुदाने चाहा तो बुखार उतर जायेगा।'

जैसे अमृत मिला। लपककर गोलियाँ ले ली। पैसे दिये और सलाम करके फिर दौडा। धूप उसी तरह चमक रही थी, पर गलियोमे सन्नाटा था। मकान कवरिस्तानकी कब्रोकी तरह मौन-स्तब्ध खडे थे, पर वह सब ओरसे आँखे मीचे भाग रहा था कि हठात् कोई भारी-सी वस्तु उसके कन्धेपर आ पडी, 'आह'

वह चीखकर मुडा। ऑखोके आगे तिरमिरारे उठे। उठते रहे। उनके पीछे एक इन्सानकी सूरत थी, जिसके सिरपर लाल पगडी थी, जिसके शरीरपर खाकी कपडे थे और जिसके हाथमे राइफल थी। उसने कडककर पूछा, 'कहाँ जाता है बे?'

'घर हुजूर।'

'इस वक्त?'

'हजूर! वच्चा मरनेवाला है। दवा लाया हूँ।'

'थाने चलो।'

'हजूर।'

'वको मत! वहानेवाज साले। आगे वढो।'

'हजूर, हजूर, माफ कर दो। मेरा वच्चा मरनेको पडा है।'

सिपाहीने उसे क्रूर ऑखोसे देखा। आँखोसे ऑखे मिली, फिर सहसा मुडकर अपने साथीसे कहा, 'इसकी तलाशी लो।' साथी आगे वढा। अहमदने हाथ ऊपर उठा दिये। उसकी जेबे खाली थी, सब कुछ खाली था केवल मात्र आँखोमे दहकता हुआ पानी भरा हुआ था और वह पानी समस्त भूमण्डलको भस्म कर देनेको आतुर था। वह

पतिव्रता

प्रदर्शनीमे घूमते-घूमते अचानक चन्द्रा चौंक पडी, 'अरे वह कौन है?'

उसके पतिने अचकचाकर पूछा, "कौन है?"

चन्द्रा शीघ्रतासे आगे वढती-वढती वोली, "सुमित्रा! मेरी बाल-सखी!' और उसने गद्गद होकर पुकारा, "सुमित्रा, आ-आ!"

सुमित्राके देखते-ही-देखते चन्द्राने आकर उसे बाहोमे बाध लिया। आँखे राजल हो उठी। 'इतना ही बोल सकी' 'सुमित्रा!'

सुमित्रा फुसफुसाई, "चन्द्रा!"

चन्द्रा सभलकर वोली, "कहाँ थी तुम?"

सुमित्राने उसी तरह कहा, 'और तुम?'

और फिर दोनोने आँसू पोछ डाले। अचरजसे उन दोनोके पतियोने एक दूसरेको देखा। आते-जाते अनेक व्यक्तियोकी आँखे उठी, पर वे दोनो चकित, विह्वल भावावेशमे खोयी-खोयी कई क्षण उसी तरह एक-दूसरीको देखती हुई खडी रही कि चन्द्राके पति मनोहर चतुर्वेदी वोल उठे, "घर लौट चले चन्द्रा!"

और वे सव घर लौट आये। चन्द्राके पति इस नगरके प्रसिद्ध वकील थे। सुमित्रा पतिके साथ प्रदर्शनी देखने आई थी कि चन्द्राने अचानक देख लिया। फिर तो दोनोने एक दूसरेके दुख-दर्दकी वाते सुनी। पुराने किस्से उखाडे गये। दबी हुई स्मृतियाँ उभर आयी। चन्द्रा वोलते नही थकी। सुमित्रा हसते-हसते रो-रो उठी।

सुमित्रा हसी, "वे बीमा कम्पनीके एजेण्ट है चन्द्रा ! जानती हो कितने परोपकारका काम है यह ?"

चन्द्रा जोरसे हँस पडी, "तो यह बात है बहन ! परन्तु कहती जो तुम ठीक हो। बीमा करानेके बाद आदमी निश्चिन्त हो जाता है।"

सुमित्रा और भी गर्वसे उमडकर बोली, "बीमासे आदमीको व्यक्तिगत लाभ ही नही होता, बल्कि समाजका उद्धार भी होता है। एक आदमी थोड़ेसे पैसोसे अपने परिवारकी उस समय सहायता करता है, जब उसपर कष्टके बादल छाये रहते है। अगर बीमा न कराता तो उसकी स्त्री दुराचारमे फँसकर समाजके पाप बढाती या कुत्तेकी तरह दर-दर मारी फिरती और एक दिन आत्महत्या करके समाजका नाश करती। बच्चोकी दुर्गति होती। गर्ज कि हर अवस्थामे समाजपर भार बनती। दिन-रात ऐसे अनेक दृश्य हम-तुम देखते है, परन्तु कितने भाग्यशाली है वे लोग, जो जरा-सी दूरदर्शिताके कारण मनुष्यके साथ-साथ समाजकी भी रक्षा करते है ? मनुष्यसे ही समाज बनता है। क्या कहूँ, चन्द्रा ! बीमाके अनगिनत लाभ है। मानसिक शान्ति, शारीरिक स्फूर्ति, आर्थिक सुविधा, परिवारका प्रेम, समाजमे प्रतिष्ठा और सदाचारके अमूल्य नियम अनायास ही आदमीके हाथ लग जाते है। इन बातोके अलावा इस दुनियामे है ही क्या, जिसकी आदमीको जरूरत है।"

चन्द्रा बडी प्रभावित हुई, बोली, "तुम तो खूब समझती हो, सुमित्रा। मुझे अचरज हो रहा है, क्या तुम वही सुमित्रा हो, जो क्लासमे सबसे पिछली बेचपर साडीमे मुह छिपाकर बैठा करती थी ?"

सुमित्रा तनिक गम्भीर हुई, "सब उनकी कृपा है, चन्द्रा ! मुझे उन्होने आदमी बना दिया है, नही तो ।"

बीच हीमे चन्द्रा बोल उठी, "सच कहती हो, बहन ! साथी अच्छा मिल जाता है, तो जीवन बन जाता है, नही तो घर-घरमे महाभारत मचा है।"

बैंकमे जमा कर दिया था। उस दिन रुपया लेनेके लिए जैसे ही वे बैंकके खजाचीके पास पहुँचे तो चौक पडे, "कृष्ण बाबू !"

खजाची मुस्कराकर खडा हो गया, "वकील साहब, आप !" उस दिन फिर चन्द्रा और सुमित्रा छातीसे छाती जुडाकर रो उठी। उलाहने दिये गये। सफाइयाँ पेश हुई और फिर, बात क्षमाके ऊपर आकर समाप्त हो गयी। सुमित्राकी गोदमे डेढ सालका विनोद था और चन्द्राके साथ भी साल भरकी प्रतिमा आयी थी। चन्द्राने विनोदको छातीसे चिपका लिया और सुमित्राने प्रतिमाको। सुमित्रा बोली, "प्रतिमा तो चीनी लडकी जान पडती है, मानो मोमकी गुडिया हो।"

चन्द्राने कहा, "और विनोद जापानी लडका है।"

सुमित्रा खिलखिला पडी, "जापान चीनको खाये जा रहा है। मुझे दोष मत देना फिर।"

चन्द्रा भी हँस पडी, "जो लडते है वे प्रेम करना भी जानते है और फिर चीनको खाना क्या आसान है ?"

"सच क्या ?"

"और नही तो।"

"तू लडती होगी वकील साहबसे।"

"जो बाहर लडता है, वह घरमे कैसे लडेगा ? तू इतना भी नही जानती। अगरेज बाहरके दुश्मनसे लडनेके लिए कैसे घुल मिल गये है ?"

सुमित्रा बोल उठी, "मै यह सब कुछ नही जानती। हाँ, इतना जानती हूँ कि लडना अच्छा नही है। सबेरे जाते है, सन्ध्याको थके लौटते है। ऐसी हालतमे मै क्रोध करूँ या लडू, तो उनका जीवन एक भार बन जाये। पहले बीमा कपनीमे थे। पैसे तो मिलते थे, परन्तु जीवनका आनन्द नही था। हर वक्त मारे-मारे फिरते थे। बच्चा तडप रहा है, परन्तु उन्हे जाना है। मै बीमार हूँ, पर वे रुक नही सकते। अब बात यह है, दस बजे गये,

बोली नही। आँखोने बोलने ही नही दिया। आपही दिलकी बाते कहने लगी। लेकिन कुछ भी हो, चन्द्राने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। अगले वर्ष गुडगावाँ जाते समय वे सुमित्राके घर पहुँचे, परन्तु उस घरमे तो कोई और सज्जन रहने लगे थे। सुमित्राके पति कुछ दिन हुए नौकरी छोड़कर कही चले गये—केवल इतना ही पता उन्हे लगा।

वकील साहबको बुरा लगा, बोले, "अजीब आदमी है। टिककर कोई काम ही नही कर सकते। कभी बीमा कपनी, कभी बैक? अब न जाने कहाँ होगे? कौन ढूढे उन्हे? चलो, होटलमे ठहरेगे।"

चन्द्रा लज्जित हुई परन्तु भाग्य अच्छा था। पडोसके सज्जनने आकर बताया कि कृष्ण बाबूने बेंककी नौकरी छोडनेके बाद नयी दिल्लीमे 'स्टुडियो' खोल लिया है। वे सब वही गये। पुकारनेपर सुमित्रा आयी। देखकर फूल उठी, "तुम बडी अच्छी हो, बहन!"

चन्द्राने बनावटी गुस्सेसे कहा, "तुम बडी खराब हो। कितना शर्मिन्दा किया आज?"

सुमित्राने क्षमाके चुने हुये शब्द ढूढ निकाले। चन्द्रा हस पडी। फिर खाना-पीना हुआ। वकील साहब बाहर चले गये। बच्चे खेलने लगे और दोनो सखियाँ बातोमे लग गयी। चन्द्रा शिकायत-भरे स्वरमे बोली, "पर बहिन! यह क्या बात है? टिककर कोई काम क्यो नही करते?"

सुमित्राने धीमेसे दबे स्वरमे कहा, "यह भी क्या अपने बसकी बात है? उनका जी तो बहुत दुखता है, पर क्या करे?"

"क्यो?"—चन्द्राने पूछा।

"तुम देखो न, बहन! बैकमे नौकर थे। सोचा था, जीवन यही कट जायेगा, पर बात नही बनी। इतना परिश्रम करते थे, परन्तु फिर भी डाट-डपट होती रहती थी। छुट्टी मागते तो नही मिलती। रातको देरसे लौटते। मै बैठी-बैठी थक जाती। एक दिन तो सवेरे चार बजे आये।"

चन्द्रा अचकचायी, "सारी रात काम करते रहे!"

उतर आती है। जब देखो तब सारी याद ताजी हो जाती है। जब कोई बूढा पुरुष अपनी जवानीका फोटो देखता है, तो उमगे भर आती है, दिल फडक उठता है। विनोद आज बच्चा है। जब बडा होकर देखेगा कि मैं तीन सालका कैसा लगता था, कितना खुश होगा ? सारा जमाना आँखोमे उतर आयेगा। कितनी ही मीठी, कडवी स्मृतियाँ साकार हो उठेगी। जहागीरकी तरह चाहेगा, एक बार फिर बच्चा बनता तो कैसा होता ?

सच कहती हूँ, चन्द्रा ! ये फोटो आदमीको कवि बना देते हैं। और तुम देखो, मित्र परदेशमे है, कारणवश वर्षोतक नही मिल सके। एक दूसरेको भूल गये। भूलना भी मनुष्यका स्वभाव है। लेकिन अगर एक-दूसरेका फोटो पास हो तो वे कभी नही भूल सकते। याद सताती रहेगी और प्रेम बढता रहेगा।"

और न जाने क्या-क्या कहा सुमित्राने ? परिणाम यही हुआ कि तीसरे दिन जब वे लोग विदा हुए तो अनेक फोटो सभाले हुए थे।

× × ×

और फिर बहुत दिन बीत गये। फोटो सामने रखकर भी चन्द्रा सुमित्रा एक-दूसरेसे बाते नही कर सकी। सुमित्राने एक दिन कहा था, फोटो पास हो तो मित्रकी याद बनी रहती है, मिलनेकी जरूरत प्रेममे बाधा नही डालती। शायद इसीलिए उन्होने एक-दूसरेसे मिलनेकी जरूरत नही समझी।

उन दिनो देशमे किसान आन्दोलनकी धूम थी। देशके सभी विचारशील व्यक्ति अनुभव कर रहे थे कि किसानोकी दशा सुधरे बिना देशकी उन्नति नही हो सकती। उस दिन नगरमे इसी सिलसिलेमे कोई सभा होनेवाली थी। उसमे किसी बडे किसान नेताका व्याख्यान होनेवाला था, जलसेमें शरीक होनेके लिए आसपासके गावोसे हजारोकी सख्यामे किसान जुटे थे। चन्द्रा पतिके साथ इसी नगरमे आई हुई थी। वकील साहबको किसानोसे सहानुभूति थी, इसलिए चन्द्रा सहित वे भी जलसेमे आये थे। पहले कविता

बच्चा चुप हो गया। वातावरण तालियोकी गडगडाहटसे गूज उठा। चन्द्रा चकित, द्रवित बोल उठी, "देखते हो, वह सुमित्रा है और यह विनोद। यह तो कुछ जानती ही नही थी।"

वकील साहब बोले, "देख तो रहा हूँ।"

इसी समय कोलाहल मच गया। मचपर नेता आ रहे थे। लोगोमे वडा उत्साह था। पासके व्यक्ति फिर सुमित्राकी चर्चा करने लगे। लेकिन उस समय व्यवस्था कायम नही रह सकी। लोग एक दूसरेको धक्के दे-देकर आगे बढ गये।

नेताका भाषण होनेके बाद सभा भग हो गयी। लोग अपने-अपने घर जाने लगे।

चन्द्रा बोली, "सुमित्रा कहॉ है?"

वकील साहवने इधर-उधर देखा। भीड चारो ओर बिखर रही थी। कुछ लोग उनके पास आते जान पडे। वे किसीसे बाते कर रहे थे। एकने कहा, आपकी बडी कृपा होगी, यदि आप मेरे साथ चले। और वहाँ कुछ दिन रहे।

उत्तरमे आवाज स्त्रीकी थी। उसने कहा, "मै आपकी कृतज्ञ हूँ, परन्तु मेरे पतिने गावोके बारेमे जो कुछ बतलाया था वह, इतना दर्द-भरा है कि मै शहरकी बस्तीमे रहनेकी कल्पना भी नही कर सकती। अब वे नही हैं। उन्हीकी तरह मुझे भी रहना चाहिए। आप सब गावोमे जाये, ओर किसानोकी गरीबी दूर करनेका उपाय सोचे।"

बालक बोल उठा, "मॉ, पिताजी कहते थे, गॉवोके लोग भूखे रहते है।"

सुमित्राने बालकको अपने पास खीचते हुए कहा, "तुम्हारे पिताजी ठीक कहते थे। इस अभागे देशमे कितने ही व्यक्ति ऐसे है जो भूखे ही सडकोपर नगे उघाड़े पडे रहते हैं। और फिर, यह सब देशमे धनकी कमीके कारण नही है। वे कहते थे, हमारे देशमे अब भी बहुत धन है।"

स्नेह

उमा स्नान करके पूजाकी कोठरीकी ओर जा रही थी। उसने देखा शशिकी कोठरीमेसे दो आँखे वडी उत्सुकतासे उसकी ओर ताक रही है। उससे रहा न गया। वह वहाँ जाकर बोली, "क्या कहते हो, शशि ?"

शशि काँप उठा। बोला नही।

उमाने फिर कहा, "बच्चे ! हम आ गये है। क्या कहते हो ?"

शशि फिर भी नही बोला। उसने केवल उमाकी ओर देख भर लिया। उसकी आँखोमे पानी उमड आया था।

उमा कातर हुई। उसने कहा, "तुम रोते हो ! क्यो बच्चे ?"

इस बार शशि बोला, "चाची ! तुम चली जाओ, नही तो ताई आकर मुझे मारेगी।"

'क्यो मारेगी ?"

"यह तो मै नही जानता"—शशिने भोलेपनसे कहा, "पर ताई मुझे किसीसे बाते करते देख लेती है तो मारा करती है।"

"हमारे साथ बात करते देखकर वे नही मारेगी। आओ ! तुम हमारे साथ चलो।"

"नही, चाची। हम हाथ जोडते है। तुम चली जाओ। ताई आती होगी।"

शशिकी आँखे फिर भर आई। उमा सहसा कुछ न कह सकी। उसका हृदय शशिके लिए व्याकुल हो उठा। वह अभी इस नये घरमे वहू बनकर आई है। वह न शशिको समझ पाती है, न अपनी विधवा जेठानी निरुपमाको। जिस दिन उसने ससुरालमे पैर रखा था उसी दिन निरुपमाने उसे समझा दिया था, "बहू-रानी ! इस अभागे

एक दिन साहस करके उमाने अपने पतिसे कहा, "आप जीजीको समझाते क्यो नही ?"

अमूल्य बाबू अचरजसे बोले, "किसलिए, उमा ?"

"कि वे शशिके प्रति इतनी कठोर न हो !"

"तुम नही जानती, उमा ! भाभी उसे बहुत प्यार करती है, परन्तु प्रकट करना नही चाहती, इसलिए वे इतनी कठोर है।"

उमा अचरजमे बोली, "प्रेममे क्या कठोरता होती है ?"

"हाँ ! होती है। जब सघर्ष होता है, तब प्रेम ताडनामे बदल जाता है।"

"नही !" उमाने कहा, "कठोरता ईर्ष्यामे होती है। एक दिन जब यातना सहते-सहते शशि मर जायगा, तब जीजी क्या उस प्रेमको लेकर चाटेगी ?"

कहते-कहते उमाकी आँखे छलछला आई। और उसी समय शशिकी चीत्कार उसे सुन पडी। दोनो चौंक पडे। उमा जल्दीसे उस ओर चली गई। उसने देखा निरुपमा शशिको मार डालनेपर तुली है और बालक बिलबिलाकर कह रहा है, "इस बार माफ कर दो ताई ! अब नही करूँगा।"

उमासे यह न देखा गया। उसने निरुपमाके पैर पकड लिये। बोली, "अब छोड दो जीजी !"

निरुपमाने रुककर तीव्र दृष्टिसे उमाको देखा, मानो कहा, "तुम्हे बीचमे बोलनेका क्या अधिकार है ?"

उमाने पूछा, "बात क्या थी, जीजी !'

क्रोधसे भरी निरुपमा बोली, "तुम्हारे लाडकी बात थी वहू ! अब लडका चोरी भी करेगा। मैं कहती हूँ मेरे घरमें यह न होगा ! मैंने सबेरे पाँच रसगुल्ले गिने थे। अब चार है।"

इतना कहकर क्रोधसे धम-धम करती हुई वे चली गई। उमाने देखा,

"जिसके कारण तुम इस दशाको पहुँच गई, उसकी देखनेकी साध अब भी बाकी है। तुम्हे उसकी छायासे भी बचना चाहिए, बहू।"

"तुमने यह क्या कहा, जीजी"—उमाने हृदयके आवेगको रोकते हुये कहा।

"शशिको उसके मामाके यहाँ भेज देती हूँ। इस अभागे बालकके कारण मै अपनी चाँद-सी बहूको नही खो सकती।"—कहते-कहते निरुपमाकी आँखे भर आई।

उमा कोई उत्तर नही दे सकी। भावावेशसे उसकी जिह्वा रुँधसी गई। उसने कातर दृष्टिसे अपने पतिकी ओर देखा, मानो उसने कहा, "ऐसे तो मै और भी जल्दी मर जाऊँगी।"

और जब निरुपमा चली गई तो अमूल्य बोले, 'मै कहता हूँ उमा! कलसे हम दूसरे मकानमे चलेगे।"

"तब क्या होगा"—उमाने अचरजसे कहा।

"तुम भाभीके अत्याचारको नही देख सकोगी।'

"तुम कैसी बाते करती हो जी? शशिको जब भी और जहा भी दुःख होगा तो क्या मेरी आत्मा तडप न उठेगी।"

उसी समय अमूल्यने खिडकीके परदेपर किसीकी परछाही देखी। उन्हे समझते देर न लगी। उन्होने खिडकी खोल दी। वह शशि था। अमूल्यको देखकर वह शीघ्रतासे लौट चला।

अमूल्य बोले, "शशि, इधर आओ।"

उमा चौककर बोली, "शशि है।"

लेकिन शशि रुका नही। अमूल्यने उमासे कहा, "जिसे तुम स्नेह करती हो, जिसे तुम सुखी देखना चाहती हो, उसके लिए तुम्हे यह मकान छोड़ना ही होगा।"

उमा बोली, "त्याग इसमे क्या है? पर सोचती हूँ क्या हम कायर नही है?"

सचमुच बहुत बीमार है । लेकिन वह क्या करे ? उसने अमूल्यसे कहा, "तुम जरा उस घर जाकर देखो तो शशि कैसा है ?"

अमूल्यने इतना ही कहा, "मै अब वहाँ नही जा सकता ?"

उमा क्या करे। मन मारकर उसने दो दिन और बिता दिये, पर तीसरे दिन उससे नही रहा गया। उसने निरुपमाकी दासीको बुलाकर पूछा, "शशि अच्छा है, श्यामा ?"

श्यामाकी आँखे सजल हो उठी। उसने कहा, "बहू, तुम्हारी जेठानीने जबसे जाना है कि शशि तुम्हारे पास आता है, तो उन्होने उसका स्कूल जाना बन्द कर दिया है। उसे खूब मारती है। बेचारा बालक शायद अधिक जी न सकेगा।"

उमा काँप उठी, 'सच कहती हो, श्यामा !'

श्यामा बोली, "सदासे मै उनके साथ हूँ। वे नहीं चाहती कोई और शशिसे प्रेम करे।"

"अच्छा चलो श्यामा! मै तुम्हारे साथ चलकर जीजीसे पूछूँगी कि प्रेमपर भी क्या किसीका अधिकार होता है ?"

श्यामा बोली नही। उमाने अशोकको गोदीमे उठाया और पुराने मकानमे पहुँची। चौकमे शशि चटाईपर लेटा था। वह उसे पहचान न सकी। उसका मुख पीला पड गया था। बदनकी हड्डी हड्डी चमक आई थी। वह रोते-रोते विह्वल हो गई।

निरुपमा रसोई-घरमे थी। रोना सुनकर बाहर आई। उमाको देखकर उसका क्रोध उमड आया। चीखकर बोली, "तुम यहाँ क्यो आई ?"

उमाने अपनी जेठानीकी ओर तीव्रतासे देखा। बोली, "तुम्हारे अन्तरमे जो आग जली है, उसीकी भूख मिटाने आई हूँ, राक्षसी !"

और उसने अशोकको उठाकर उसके चरणोपर डाल दिया। अर्द्ध-

स्वरमे बोली, "जीजी ! इसे खाकर अपनी आग शान्त कर लो और मेरे शशिको मुझे दे दो !"

निरुपमा उस क्षण स्तम्भित-चकित बुतसी बनकर रह गई ! पर उमाने उसकी ओर देखा भी नही। उसने शशिको गोदीमे उठा लिया और चल पडी।

१९३४]

अगम-अथाह

गाडीने सीटी दी। रमेशने राहतकी सास खीची कि तभी शीघ्रतासे एक वृद्ध व्यक्तिने खिडकीके पास आकर कहा, "मुझे अन्दर आ जाने दीजिये।"

जैसे उन्होने ततैयोके छत्तेमे हाथ डाल दिया। एक साथ अनेक क्रुद्ध आँखे उस ओर उठी। सौभाग्यसे यह सतयुग नही था, नही तो विश्व-मित्र या दुर्वासाकी तरह वे उस वृद्धको वही भस्म कर देते। हुआ यह कि रमेशके मित्रने चुपचाप दरवाजा खोल दिया। वृद्ध हाँफते-हाँफते अन्दर घुस आये—घुस आये क्योकि अनेक नवयुवकोने उनको बाहिर फैक देनेकी पूरी-पूरी कोशिश की थी। आ गये तो देखा—उनकी देह काँपती है, चेहरा झुर्रियोमे भरा हुआ है और आँखोमे ऐसा कुछ है कि न देखते बनता है, न दृष्टि हटानेको जी करता है। आँखे जैसे बन्द होती है कि हरहराकर फिर खुल जाती है। फिर तो हृदयमे धडकन ही नही होती, ऐसा लगता है जैसे कोई उसे आरीसे चीरने लगा है।

गाडी धीरे-धीरे गति पा रही थी और दूसरे लोगोका ध्यान उस वृद्धकी ओर बढ चला था। वे भी जो किसी गहरे वाद-विवादमे व्यस्त थे, धीरे-धीरे फुसफुसाते और फिर चुप होकर उन्हे देखने लगते। वे दयनीय और करुण, पाखानेके पास खडे थे। सामनेकी बर्थपर जो एक अधेड सज्जन बैठे थे, वे एक टक वृद्धकी ओर देख रहे थे। सहसा वे पीछेको खिसके, बोले, "आप यहाँ बैठ जाये।"

वृद्ध चौंके, "जी!"

आप यहाँ बैठ जाइये।"

वृद्धने ऐसे देखा जैसे स्वय पानी-पानी हो चले हो, फिर बैठते-बैठते कहा, "भगवान् तुम्हे सुखी रखे, भइया!"

अधेड व्यक्तिने फिर पूछा, "आप कहाँ जा रहे है?"

"कहाँ जा रहा हूँ?" जैसे किसीने वृद्धके अन्तर्मन पर चोट की थी। एक क्षण ऊपर देखा, कहा, "क्या बताऊँ, भइया! जहाँ भी भाग्य ले जायगा, जाऊँगा।" कहते-कहते झुर्रियोमे एक हल्कासा कपन हुआ। ओठ हिले, पलके मुँद-सी गयी। खुली तो उनमे पानी नही था, हल्की चिप-चिपाहट थी। उस व्यक्तिके पास एक युवक बैठा था। वह बोल उठा, "आप दिल्ली रहते है?"

"हाँ बेटा!"

"कोई दुख है आपको?"

तब तक एक और अधेड व्यक्तिका ध्यान उधर खिच गया। वे बोले, "शायद आपका कोई रिश्तेदार खोया गया है? आजकल गुमशुदगीकी घटनाएँ बहुत हो रही हैं।"

"जी शायद वह आपका बेटा है?" तीसरे आदमीने कहा।

रमेशने एक बार उन आदमियोको देखा, फिर उस वृद्धको। फिर उन आदमियोको देखा और फिर उस वृद्धको कि वृद्ध बोले, "हाँ बेटा, तुम ठीक कहते हो। मेरा बेटा ही खोया गया है।"

"मैने कहा था न", अधेड सज्जन बोले, "वह तो आपकी सूरत ही कह रही है। बेटेका दर्द अलग होता है।"

"क्यो जी, दिल्लीमे था?"

"जी हाँ"

"कित्ता बडा था जी?"

"सोलह वर्षका था।"

डिब्बेकी एकमात्र स्त्रीने अपने बच्चेको गोदमे अन्दरको खीचकर धोतीका पल्ला उढा दिया। ऊपरकी बर्थपर लेटे हुए महाराष्ट्रीय सज्जनने

अब नीचे झाँका। शोर आप ही आप बुदबुदाहटमे बदल चुका था। एक व्यक्तिने पूछा, "क्यो जी, कैसे चला गया था?"

"जी स्कूल गया था।"

"और फिर लौटकर नही आया। मेरे एक दोस्त है, उनका लडका भी स्कूल गया था, आज तक नही लौटा।"

सुनकर वृद्ध कुछ अस्पष्ट स्वरमे बुदबुदाये, पर प्रश्नकर्ताने फिर प्रश्न किया, "कितने दिन हो गये जी?"

"यही दो महीनेसे कुछ ज्यादा।"

"दो महीने? तब तो दिल्लीमे बडी मार-काट मची हुई थी।"

वृद्धने गहरी सास खीची, कहा, "तभीकी बात है। स्कूलमे इम्त-हान हो रहे थे। अचानक कुछ लोगोने हमला कर दिया।"

"मुसलमानोने किया होगा।" महाराष्ट्रीय सज्जन बोल उठे।

"जी नही।"

"तो?"

"तो आप समझ लीजिये। उन लोगोने एक जातके सभी लडकोको मार डाला।"

"सबको?"

"जी हाँ।"

अवाक्-अपलक यात्रियोने एक दूसरेको देखा। सबके मन भय और वेदनाके धुएसे घुट रहे थे। एक व्यक्तिने पूछा, "कितने होगे जी?"

इसका जवाब दिया रमेशके मित्रने, "कितने थे, यह कभी कोई नही जान सकेगा और जाननेका महत्व ही कितना है!"

"पर आपका बेटा क्या ?" ट्रकपर बैठे हुए युवकने सकुचाते हुए पूछा।

वृद्धके नयन फिर चिपचिपा रहे थे। बोझिल वाणीमे कहा, "कहते है, वह डरकर कही भाग गया।"

"जी हाँ, हिन्दू, हिन्दूको नही मार सकता।"

"अजी कुछ न पूछो, आजकल तो .।"

"आजकी बात नही है। आज मुसलमान है कहाँ?"

"है क्यो नही?"

रमेशके मित्र हँस पडे, "मुसलमान अब हिन्दुस्तानमे नही है, मेरे दोस्त! जो मुसलमान-नुमा मूरते दिखाई देती है, वे उनकी लाशे है, चलती-फिरती लाशे।"

और यह कहकर वे और भी जोरसे हँसे। वह हँसी डिब्बे वालोको बहुत बुरी लगी, जैसे कोई मरघटमे हस पडा हो। महाराष्ट्रीय सज्जनने कहा, "आप पाकिस्तानकी बात नही सोचते। वहाँ तो एक भी हिन्दू नही बचा है।"

"नही बचा है तो अच्छा है, तडपना तो नही पडेगा"

नीचे बैठे हुए अधेड व्यक्तिने उधर ध्यान न देकर फिर पूछा, "क्यो जी, कुछ अता-पता लगा?"

"जी हाँ, सुना है वह कराची चला गया है। वहाँसे जो लोग बबई आये है, उनसे पता लगा है कि वह भी शायद बबई आ गया है, वही जा रहा हूँ।"

रमेशके पीछे जो व्यक्ति बैठे थे, उन्होने धीरेसे कहा, "बात समझमे नही आती, स्कूलसे भागकर लडका घर क्यो नही आया? कराची क्यों गया और कैसे गया?"

रमेश सबकी बाते सुन रहा था, परन्तु बोलता नही था, क्योकि उसकी दृष्टि बार-बार वृद्ध सज्जनपर जा अटकती थी। वह सोचने लगता था—उस दिन सवेरे जब इनका बेटा स्कूलमे परीक्षा देने गया होगा, तो क्या इन्होने सोचा होगा कि वह अब नही लौटेगा? उसकी माँने प्यारसे उसे दही और लड्डू खिलाया होगा। कहा होगा, 'बेटा, परचे अच्छे करना और देख, सीधा घर आना! आजकल बुरे दिन है।' और फिर बेटा खिलता हुआ स्कूल गया होगा और फिर सन्ध्याको जब वह बेटेकी राह

देख रही होगी, तब उसने वह दर्दनाक खबर सुनी होगी। तब–तब रमेश काँपा। उसने गरदनको झटका दिया। उसके नयन भर आये। उसने वृद्धको देखा—वे उसी तरह कह रहे थे, "उसे घूमनेका बहुत शौक था। उमर भी चचल थी। उसे वे लोग भगाकर ले गये।"

"आपने अखबारोमे निकलवाया है ?"

"जी हाँ। अखबारोमे निकलवाया है। रेडियोपर भी ऐलान हुआ है, पर आप जानते है, वहाँ हमारे अखबार नही जाते, न कोई रेडियो सुनता है।"

"जी हाँ। सब कुछ गडबड ही गडबड है।"

रमेशका मस्तिष्क घूमफिरकर फिर वही आ गया। खबर लाने वालेने कहा होगा—स्कूलमे कत्ले-आम मच गया। सब बच्चे मार डाले गये। तब हतभागिनीसी उसकी माँके हृदयसे एक तेज चीख निकली होगी और अपने बच्चेको देखनेके लिए पागलसी आतुर वह बाहिर भागी होगी। किसीने कहा होगा, 'ठहरो बीबी! वहाँ खतरा है। अभी इन्तजार करो।' और उसने इन्तजार किया होगा। शायद अब तक कर रही है। अभी भी वह अपने दरवाजेसे बाहिर झाककर, उस चिर-परिचित मार्गको देखती होगी जिसपर उसका बेटा आता जाता होगा।

रमेशके लिए सोचना असभव-सा हो गया। वह दिल्लीमे रहता था। उसने उस घटनाकी चर्चा सुनी थी, पर उससे अधिक नही जितनी वह आज सुन रहा था। तभी सहसा उसके मित्रने कहा, "सामान उठा लो, रमेश! हम यही उतरेगे।"

गाडी धीमी पडने लगी और शोर बढ चला। रमेशने ऊपरसे होल्डोल उतार लिया। फिर उन वृद्धको देखा—उस धकापेलमे वह उसी तरह शून्यमे ताकते हुए बैठे थे। वह नीचे उतर गया। उतर गया तो जैसे होश आया, परन्तु वृद्धकी झुर्रियाँ और चिपचिपाहटसे पूर्ण दृष्टि वह नही भुला सका। वे उमड-घुमडकर विचारोका तूफान पैदा करती ही रही। कई दिन बाद जब

लौटकर दिल्ली आना हुआ, तब भी कभी-कभी बिजलीकी तरह वह मूर्ति उसके नेत्रोमे कौंध जाती थी। इन्ही दिनो अचानक एक पुराने मित्र मिल गये। कई बार उनका निमन्त्रण आ चुका था। वास्तवमे उनकी पत्नीका बडा आग्रह था। रमेश उन्हे भाभी कहता था। वे कारमे बिठाकर उसे घरपर ले गई। चायका वक्त था, बिना पुकारे नौकर मेजपर सामान जुटा गया और भाभी चाय तैयार करने लगी। मित्र किसी जमानेमे कालेजके प्रोफेसर थे। कॉग्रेस-आन्दोलनमे बहुत दिन जेल काटी। अब शरणार्थी-विभागमे कोई बडा-सा पद उन्हे मिला था, इसलिए यह स्वाभाविक था कि चर्चा 'सब रास्ते रोमको जाते है' वाली कहावतके अनुसार हर कही होकर शरणार्थियोकी समस्यापर आ अटकती थी। बातो-बातोमे रमेश उन वृद्धकी चर्चा कर बैठा। अचरजसे मित्रने मुस्कराकर कहा, "मै उन्हे जानता हूँ।"

रमेशने पूछा, "क्या वे आपके पास आये थे?"

"कई बार आये है। उनको पूरा यकीन है कि उनका लडका कही न कही जिन्दा है।"

"पर क्या यह सच हो सकता है?"

"असभव। वह उसी दिन मारा गया होगा।"

"पर वह तो हिन्दू था।"

मित्र मुस्कराये, "मौत जात-पात नही पूछती। और वह तो सामूहिक वध था; बहुत मुमकिन है, हत्यारे उसे न पहिचान सके हो।"

"शायद।"

"ओर नही तो वह कहाँ जाता?"

"पर उसकी लाश!"

बात काटकर मित्रने कहा, "ऐसे मौकोपर जो कुछ होता है वह मै जानता हूँ। कौन कह सकता है, कितनी लाशे उन्होने जला या दबा नही दी होगी। तब तो गिनती कम करनेका प्रश्न होता है।"

भाभीने प्याला ठकसे मेजपर रख दिया और करुणासे उद्वेलित होकर अग्रेजीमे कहा, "आदमी कितना बर्बर हो गया है।"

मित्र हँसे, बोले, "आदमी वास्तवमे बर्बर ही है। कौन कह सकता है मै कब तुम्हारा गला नही घोट दूँगा। कमसे कम मुझे तो इसमे कुछ असभव नही लगता। और फिर इधर जो कुछ हम देख चुके है, वह तो इस सभावना पर मोहर लगाने वाला है। हॉ, यह बात दूसरी है कि कुछ लोग मानते है कि एक दिन मनुष्य शारीरिक बलकी तरह बौद्धिक बलका परित्याग करके सम्मिलित जीवनको प्राप्त करेगा। पर जब तक बुद्धि है, बर्बरतासे छूटनेका कोई उपाय नही है।"

रमेशने चायकी घूंट भरी और फिर कहा, "भविष्यमे क्या होगा, इसपर विचार करनेसे इतना लाभ नही है जितना वर्त्तमानपर। मै कहता हूँ, वे क्यो नही मान लेते कि उनका लडका अब दुनियामे नही रहा। इस दुखको स्वीकार किये बिना क्या उन्हे शान्ति मिलेगी?"

"दुख तो यही है", मित्र बोले, "उन्होने इस दुखको स्वीकार नही किया है। विधिके इस दानका तिरस्कार ही उन्हे साल रहा है।"

भाभीने पूछा, "तुम इसे विधिका दान कहते हो?"

"कोई चिन्ता नही", वे बोले, "तुम इसे व्यक्तिका दान कह सकती हो।"

रमेशने सिगरेट जलाई और दियासलाईको बुझाते हुए कहा, "तो तुम उन्हे समझाते क्यो नही?"

"समझाना चाहता हूँ", मित्रने धुएँके उठते हुए बादलोको ध्यानसे देखा, "पर उनकी ऑखे देखकर कलेजा मुँहको आने लगता है। कुछ कहनेको मन नही करता। बुद्धि बहुतेरा जोर लगाती है, पर उनकी दृष्टि——रमेश मै तुमसे क्या कहूँ——सब विचारोको पाश-पाश कर देती है। तब मै सोचता हूँ, आज यदि मुझमे नारदकी शक्ति होती तो अपने तपोबलसे, राजाके बेटेकी तरह, उनके बेटेकी आत्माको बुलाकर दिखाता कि जिसे

वे अपना बेटा समझते थे, वह उनका दुश्मन था। तभी तो बुढापेमे तड़पाकर चला गया।"

रमेशने उनका प्रतिवाद करना चाहा, पर तभी देखा कोई अन्दर चला आ रहा है, लेकिन यह देखकर कि साहब अकेले नही है वह ठिठक गया है। न जाने क्या हुआ, दूसरे ही क्षण रमेश चौंककर उठा, "अरे, ये तो वही वृद्ध है।"

मित्र मुडे, "कौन ?" और फिर खडे होकर कहा, "आइये, चले आइये। ये मेरे मित्र है।"

आज उनके वेशमे इतना ही परिवर्तन था कि हजामत बढ गयी थी और उसने उनके मुखकी भयकरताको और भी गहरा कर दिया था। वे बैठ गये तो मित्रने कहा, "चाय पियेगे ?"

एक फीकी-सी मुस्कराहट झुर्रियोमे उठी और वही खो भी गयी, बोले, "चाय पिऊगा, पर पहले मेरी बात सुन लो। मुझे निश्चित रूपसे पता लगा है कि किशोर मुल्तान कैम्पमे है।"

"जी, मुलतान ?" मित्रने चौककर सभलते हुए कहा।

"जी हाँ, मुलतान कैम्पमे। बबईमे एक सज्जन मिल गये थे। वे सिधसे आये थे। मैने उन्हे हुलिया बताया। ठीक उसी तरहका एक लडका उन्होने मुलतान कैम्पमे देखा था। वही रग, वही आँखे, वही कपडे। नीला नीकर, सफेद कमीज, नीली धारीकी जुराबे और काला जूता। माथेपर दाहिनी ओर चोटका निशान भी उन्होने बताया। अग्रेजी बोलना पसंद करता है और शरारती है।"

रमेशने देखा, कहते कहते वृद्धकी आँखे ऐसी चमकी जैसे घोर अन्धकारमे कोई जुगनू चमक उठता है, बार बार चकम उठता है। मित्रने साहस करके पूछा, "पर वह मुलतान कैसे जा सकता है ?"

उन्होने दृढतासे कहा, "वह मुझसे अक्सर मुलतान जानेकी बात कहा करता था। सच तो यह है, उसे पजाब बडा प्यारा था। जान पडता है,

वह हत्यारेसे जान बचानेके लिए स्कूलसे भाग गया था। स्टेशन पास था। कोई गाडी जाती होगी, उसीमे बैठकर चला गया।"

"हो सकता है।"

"जी हॉ, यही हुआ है।"

"तो फिर?"

"तो आप कृपा करके मुलतान कैम्पके इन्चार्जको लिख दे। जरा तसल्लीसे लिख दे। आपकी दयासे उसका पता लग गया तो "

आँसू न जाने कहॉ रुके थे। झुर्रियोमे अटक-अटककर बहने लगे। रुधे गलेसे उन्होने अपनी बात जारी रखी, "आपने मुझपर बहुत मेहरबानियाँ की है। मै उन्हे नही भूल सकता। एक बार और कोशिश कर देखिये। उसकी मॉको पूरा यकीन है कि वह मुल्तानमे है।"

और फिर सदाकी तरह जेबसे एक चिट्ठी निकालकर उन्होने कहा, "उसकी माँने यह चिट्ठी लिखी है। आप भी कैम्प इन्चार्जको लिख दे कि वह उसे समझा दे कि बेटा, तुम्हारी मॉ तुम्हारी यादमे तडप रही है। तुम इसी वक्त चले आओ, नही तो हम दोनो मर जायेगे।"

एक बार फिर कुर्तेकी जेबमे हाथ डाला। कई नोट निकाले और बोले, "किशोरकी मॉने कहा है, पैसोकी चिन्ता न करे। जो कुछ है उसीका है।"

मित्रकी अवस्था बडी विषम थी। वे एक टक अपने नीचे धरतीको देख रहे थे। वह न हिलती थी, न डुलती थी। नोटोकी बात सुनकर उन्होने दृष्टि उठाई, कहा, "इन्हे आप रखिये। पता लगनेपर यदि ज़रूरत हुई तो मैं फिर मगवा लूगा। और देखिये, आप अपना ख्याल कीजिये। क्या हालत हो गयी है! आपको अब समझ लेना चाहिये "

बात काटकर उन्होने कहा, "मै सब समझता हू। न समझता तो क्या अब तक जीता रहता। पर किशोरकी माँकी बात अल्बत्ता है। खाटसे लग गयी है। हर वक्त दरवाजेपर ऑखे गडाये बैठी रहती है। कोई वक्त-

बेवक्त दरवाजा खटखटाता है, तो चिल्लाकर कहती है—देखो तो कौन है ? शायद किशोर है !"

फिर जैसे वे कही खो गये, जैसे कण्ठ भावोके उन्मेषमे जकडा गया। कई क्षण शून्यमे ताका किये और सन्नाटा गहर गहर कर सबके दिलोको कचोटने लगा। उन्होने ही कहा, "आप मेरी चिन्ता न करे। आप बहुत अच्छे है, बहुत अच्छे ! बस आप उन्हे लिख दे। बहुत-बहुत विनती करके लिख दे कि अपना काम है। समझे वे अपना ही बेटा ढूढ रहे है।"

और अपनी डबडबाई आँखोको कोहनीसे पोछकर वे उठे, "तो मै जाऊँ। आप लिखेगे ?"

"जरूर लिखूँगा और हो सका तो मै आपके जानेका प्रबन्ध भी कर दूँगा।"

वे मुडे। श्वास फूलने लगी, जैसे कोई सपदा मिली हो, कहा, "सच ?"

"देखिये, कोशिश करूँगा। चाय पीजिये।"

रमेश एक टक उनके मुखको देख रहा था। उन झुर्रियोमे शिशुकी सरलता उमड रही थी और वे दयनीय तथा डरावनी आँखे एक अज्ञात प्रकाशसे भर उठी थी, जैसे वे किसी सुहावने स्पर्शका अनुभव कर रहे थे। उन्होने कहा, "पियूँगा, एक दिन आप सब लोगोके साथ अपने घर बैठकर पियूँगा। तबतक किशोर भी आ जायेगा। वह दिन अब दूर नही है। मै जानता हूँ, वह मुलतानमे है, क्योकि जब घरसे आपके पास आनेको चला था, तो मैने रास्तेमे एक मुर्दा देखा था।"

अन्तिम बात उन्होने बडे धीरेसे कही और कहकर शिशुकी तरह हँस पडे। रमेशसे देखा नही गया। उसने मुँह फेर लिया और वे जिस तरह आये थे उसी तरह चले गये। चाय ठण्डी हो गयी थी और साथ ही उन दोनोके दिल भी। भाभी जी अन्दर चली गयी थी। कुछ देर उन्हीसे बाते करके रमेश लौट आया। मन उसका और भी अशान्त हो गया था। उसने

सोचा—यह कैसा अप्राकृतिक जीवन है ! इस छलनाका अन्त होना ही चाहिये, होना ही चाहिए।

वुद्धि जब सोचती है तो उसके पास रास्तोंकी कमी नही रहती। रमेश-को आखिर एक राह दिखाई दी। एक दिन बडे तडके उठकर उसने वृद्धके घर जानेका निश्चय कर डाला। जो कुछ हुआ, वह वुरा था; पर उस वुरेपनको सपदाकी तरह सहेजकर रखना तो निरा पागलपन ही नही, देशके साथ विश्वासघात भी है। उन्हे साफ-साफ कहना होगा—तुम्हारा वेटा मर चुका है और केवल तुम्हारा वेटा ही नही मरा है, असख्य माँ-बापोने अनगिनत गोदीके लाल गवा कर आजादी पायी है। माँके बन्धन काटनेके लिए सतानको प्राण-होम करने ही पडते हैं। मौत आजादीका पारितोषक है। इसके लिए तुम्हे गर्वित होना चाहिए।

वहुत ढूढनेपर उसे घर मिला। एक पचायती मकानमे उनका कमरा था। कुछ कपन-सा हुआ। वैसे सर्दीके दिन थे। ऊपरतक कपडे लाद लेनेपर भी वायु त्वचाका ससर्ग प्राप्त कर लेती थी, इसलिए मफलरको जरा ठीक करके दरवाजेपर दस्तक दी, तो पता लगा वे खुले पडे हैं; गिरते-गिरते वचा। तनिक-सा खोलकर झाकना चाहा कि तभी सुना कोई वोल रहा है। ठिठककर सुनने लगा। स्वर नारीका था। लगा, थका होकर भी उसमे प्रार्थनाका आवेग है। सुना—"अच्छा अव उठो भी। क्या दफ्तर नही जाओगे ?"

जवाव मिला, "नही।"

"क्यो ?"

"क्योकि यह सब झूठ है !"

"सुनो तो।"

"कुछ नही, किशोरकी माँ ! अव कवतक हम इस भुलावेमे पडे रहेगे। कवतक झूठ-मूठ मनको वहलाते रहेगे। किशोर अव नही लौटेगा। वह वहाँ पहुँच चुका है जहाँसे कोई नही लौटता और जहाँ ."

आगेके शब्द कण्ठावरोधमे खो गये। रुदनसे फटी हुई उसास ही रमेश सुन सका, परन्तु नारीका स्वर और भी दृढ था। उसने कहा, "तुम तो यू ही दुखी होते हो जी! भगवानकी माया कौन जानता है! हमारे गावके गोविन्द पडितका बेटा सात सालमे लौटा था। और सुनो तो, मैंने आज सवेरे एक सपना देखा है कि किशोर तुम्हारे पीछे-पीछे दरवाज़ा खोलकर अन्दर आया है। उसने नीली नीकर, सफ़ेद कमीज, नीली धारीकी जुराबे और काला जूता पहना है। कह रहा है, 'माँ, मैंने आजका परचा बहुत अच्छा किया है, बहुत अच्छा!' और तुम जानते हो सवेरेका सपना हमेशा सच्चा होता है। लो उठो, मैंने चाय बना ली है। पीकर बडे बाबूके पास हो आओ। देर हो गयी तो वे दफ्तर चले जायगे। उठो। उठो भी!"

उसके बाद क्या हुआ, यह जाने बिना रमेश वहाँसे सीधा अपने घर लौट आया। उसे लगा, उस वृद्ध दम्पत्तिका स्वप्न भग करनेके लिए उसे जिस हिम्मतकी जरूरत थी, उसे प्राप्त करनेके लिए अभी उसे बहुत परिश्रम करना होगा।

१९४८]

■ ■
■

अधूरी कहानी

नारोंकी आवाज़ धीरे धीरे धीमी, फिर वहुत धीमी पड गई, प्लेटफ़ार्मकी भीड छटने लगी और सब लोग अपनी-अपनी सीटपर आ वैठे। इसी वीचमे एक मुसलिम युवक एक हिन्दू सज्जनसे उलझ पडा था। युवक कह रहा था, "हम पाकिस्तान नही चाहते लेकिन कॉग्रेसने मजवूर कर दिया है। हम अब उसे लेकर छोडेगे।"

हिन्दू साहवने तलखीसे जवाव दिया, "पाकिस्तान! जो पाकिस्तान आप छै सो वरसकी हुकूमतमे न वना सके उसे अव गुलाम रहकर वनाना चाहते है। एकदम नामुमकिन।"

एक भारी वदनके मुसल्मान जो सामनेकी वर्थपर वैठे हुए थे वीचमे वोल उठे, "छै सौ नही साहव! हमने नौ सौ वरस हुकूमत की है।"

"जी हाँ! नौ सौ वर्ष!"

"और उन नौ सौ वरसमे हिन्दू वरावर हमसे नफरत करते रहे।"

"जी! क्या कहा आपने?" हिन्दू साहव बोले, "नफरत करते रहे। जो जुल्म करता है उससे नफरत की जाती है, प्यार नही।"

उन मुसल्मान भाईने वडे अदवसे कहा, "जुल्म क्या है इसपर सवकी अलग अलग राय है, पर मेरे दोस्त! आप लोगोने हमे सदा दुरदुराया। हमारी छायासे भी आपको परहेज था। माना हम जालिम थे। पर ज़ालिमके पास भी दिल होता है। वह कभी न कभी पिघल सकता है। लेकिन परहेज़ सदा मोहव्वतकी जड खोदता है। वह नफरत करना सिखाता है। आपने हमसे नफरत की और चाहा कि हम आपसे प्यार करे। यह कैसे हो सकता था? माफ करना मै आप लोगोकी कदर करता हूँ। मै मेल-जोलका पूरा हामी हू, पर आप बुरा न माने तो एक वात पूछना चाहूँगा।"

हिन्दू भाईकी तेजी और तलखी अब कुछ घबराहटमे बदलती जा रही थी और दूसरे मुसलमान साहब अजीब अदासे मुस्कराने लगे थे। तो भी उन्होने कहा, "जी ! जरूर पूछिये।"

वह मुसलमान भाई निहायत शराफतसे बोले, "अछूत हिन्दू है, पर आप उन्हे ताकत सौप दीजिये तब, मै पूछता हूँ, वह आपसे प्यार करेगे या नफरत ?"

हिन्दू भाई सिटपिटाये। उन्हे एकाएक जवाब न सूझा। मुसलमान साहब उसी सजीदगीसे कहते रहे, "मै जानता हूँ आज आप उन्हे अपने बराबर मानते है। मेरे ऐसे हिन्दू दोस्त है जो इन्सान इन्सानके बीचके भेद को दुनियाका सबसे बडा पाप समझते है। पर मेरे दोस्त ! भेदकी इस लकीरको बराबर गहरी करनेमे, जाने या अनजाने, जो लोग मदद करते आये है उनके पापोका फल तो आपको भुगतना ही पडेगा। आप न समझिये, मै आपकी कौम और मजहबपर कोई हमला कर रहा हूँ। मै आपके धर्मको समझता हूँ। मेरे दिलमे उसके लिए जगह है। मै मुसलमानोकी कमियोसे भी वाकिफ हूँ। पर दूसरोमे कमी है यह कहकर कोई अपनी कमीको सही साबित करनेकी कोशिश करे, तो वह महज अपनी जिद और बेवकूफी जाहिर करेगा। जो असलियत है उसका सामना करना ही इन्सानकी इन्सानियत है। मै आपको एक छोटीसी कहानी सुनाता हूँ। मुझे वह मेरी वाल्दाने सुनाई थी।

इतना कहकर वह पलभर रुके। डब्बेमे तबतक सन्नाटा छा गया था। पता नही लगा गाडी कब चल पडी और कब 'शडाक-शू छडाक-छू' की गहरी आवाज करती हुई अगले स्टेशनपर जा खडी हुई। सूरज डूबने लगा था। एक भाईने स्विच दबा दिया। बिजलीकी हलकी रोशनीसे डब्बा चमक उठा।

तब उन भारी बदनके मुसलमान भाईने कहना शुरू किया, "मेरे दोस्तो ! बात आजसे तीस बरस पहलेकी है। हमारे सूबेमे एक छोटा-सा

बच्चा इस तरह मोहताज बेबस बैठा है। नही, नही, आज ईद मनेगी जरूर मनेगी।"

और उसने कहा, "जा अहमद ! तू जल्दी जाकर दूध ले आ। मैं तबतक तेरे कपडे निकालती हूँ। जा जल्दी कर मेरे बच्चे।"

बच्चेने एक बार अपनी अम्मीको देखा और फिर चुपचाप बाल्टी उठाकर बाहर चला गया। लेकिन बहुत देर हो चुकी थी। सब लोग दूध बाँटकर अपने अपने काममे लग गये थे। रास्तेमे उसके साथी हँसते हँसते लोटे और बाल्टी दूधसे भरे चले आ रहे थे। उन्होने उसे देखा और अचरजसे कहा, "अरे ! तुमने बहुत देर कर दी ? तुम अबतक कहाँ सो रहे थे ! अब तो सब दूध बँट चुका है। मियाँ अब जाकर क्या करोगे ?"

अहमद सुनता और उसका दिल बैठने लगता। लेकिन उनकी बात ठीक थी। वह जिस दरवाजेपर जाता, वहाँ फर्शपर पडे दूधके छीटोके अलावा उसे कुछ नही मिलता। तब सचमुच उसका दिल भर आया। आँखे नम हो उठी। लेकिन फिर भी उम्मेदकी डोर पकडे वह आगे बढा चला गया कि अचानक एक दरवाजेपर किसी ने उसका नाम लेकर पुकारा, "अहमद ! अहमद !"

अहमदने रुककर देखा—पुकारनेवाला उसके स्कूलका साथी दिलीप है। वह उसीकी जमातमे पढता है। उसकी आवाज़ सुनकर अहमद ठिठक गया। दिलीप दौडकर आया, बोला, "तू अब तक कहाँ था ? तेरी बाल्टी खाली है।"

अहमदकी आवाज भर्रा रही थी। उसने कहा, "अम्मी बीमार है, मुझे देर हो गई।"

"तो।"

"दूध बिलकुल नही है ?"

"ना !"

फिर कई पल तक वह दोनो उसी दरवाजेपर जहाँ आध घटा पहले दूध

लेनेवालोकी आवाज गूज रही थी, चुपचाप खडे रहे कि अचानक दिलीपको कुछ सूझा। वह अन्दर दौडा गया। जाते-जाते उसने कहा, "तू यही ठहर, मै अभी आया।"

अन्दर वह सीधा अपनी माँके पास पहुँचा और धीरेसे बोला, "भाभी! कुछ दूध और है क्या ?"

उसकी माँ बोली, "हा! है, तेरे और मुन्नेके लिए है। तू पियेगा ?"

"नही।"

अचरजसे माँ बोली, "तो।"

दिलीप नही बोला।

"अरे बात क्या है बता तो।"

"अहमदको दूध नही मिला।"

"कौन अहमद ?"

"वह मेरे साथ पढता है। उसकी माँ बीमार है इसलिए उसे देर हो गई।"

कहते कहते दिलीपने अपनी माँको ऐसे देखा जैसे उसने कोई कसूर किया हो। पर माँका दिल खुशीसे भर आया। वह मुस्कराई। उसने दूधका भरा लोटा उठाया और कहा, "चल बता कहा है तेरा दोस्त।"

दिलीपने तब ख़ुशीकी छलाग लगाई। माँ बेटे दरवाजेपर आये। अहमद उसी तरह खडा था। दिलीपने हँसते-हँसते कहा, "अहमद! बाल्टी ला। जल्दी कर!"

दिलीपके लोटेका दूध अहमदकी बाल्टीमे क्या आया उसकी मोहब्बत अहमदके दिलमे समा गई। माँने पूछा, "तेरी माँ बीमार है ?"

"जी।"

"तो सेवैयाँ कौन बनायेगा ?"

"वही बनाएगी।"

'अच्छा हमे भी खिलाएगा न ?"

अहमदने सिर हिलाकर कहा, "जरूर!"

माँ हँस पड़ी। बोली, "भगवान् तेरी माँको जल्दी अच्छा करेगा। जा घर जा, जल्दी आता तो और भी दूध मिलता।"

और फिर दिलीपका हाथ पकड़कर उसकी माँ अन्दर चली गई। उसका दिल बार-बार यही कह रहा था, "परमात्मा मेरे बच्चेका दिल सदा इसी तरह खुला रखे!"

उधर अहमद फूला-फूला घर आया। दरवाजेमे घुसते ही उसने पुकारा, "अम्मी! मै दूध ले आया।"

फातिमा खिल उठी, "ले आया? बहुत अच्छा बेटा! कहाँसे लाया?"

अहमद खुशीसे बोला, "अम्मी! बहुत देर हो गई थी। सब दूध बँट चुका था लेकिन दिलीपने अपनी माँसे जाकर कहा और फिर वह मुझे इतना दूध दे गई।"

फिर एकदम बोला, "अम्मी! दूध थोडा तो नही है?"

"बहुत है, मेरे बेटे! इतना ही बहुत है।"

"हाँ अम्मी! सब दूध बँट चुका था। यह उसके अपने पीनेका दूध था।"

"अपने!"

"हाँ! अपने और छोटे भाईके। जरासा रखकर सब उसने मुझे दे दिया।"

फातिमाका दिल भर आया। गद्गद होकर बोली, "खुदा उसका भला करे! उसने गरीबकी मदद की है।"

और फिर उन्होने खुशी खुशी ईद मनानेकी तैयारी की। फातिमाका बुखार हलका हो चला। उसने अहमदको नहलाया और कपड़े बदले। किसी तरह वह उसके लिए कुरता पाजामा तो नया बना सकी थी पर जूता पुराना ही था। उसे तेलसे चुपड़कर चमका दिया और टोपीपर नई बेल टाँक दी। अहमद खुश होकर बाहर साथियोमे चला गया। नमाज़ पढ़ने जाना

था और उसके बाद मेला भी देखना था। सबकी जेबोमे पैसे खनखना रहे थे। सबकी आँखे चमक उठी थीं! सबके मन उछल-उछलकर मिठाई और खिलौनोकी दूकानो पर जा पहुँचे थे। अगरचे अहमदके पास बहुत कम पैसे थे पर क्या हुआ, उसका दिल तो कम खुश नही था। कम होता क्यो, अम्मीने उसे बताया था कि उसके अब्बा दिसावर गये हैं, बहुत रुपये लेने। अगली ईदपर लौटेगे जैसे नियाजके अब्बा लौटे थे। यह क्या कम भरोसा था। इसी भरोसेको लेकर वह ईदगाह पहुँचा। वहाँ उसने हज़ारो इन्सानो-को एकसाथ नमाज पढते देखा। उसके बाद उसने मेलेकी सैर की। चाट, मिठाई, फल, खिलौने सभी तरहकी दुकानोकी उसने पडताल की। उसने साथियोको भूलते देखा पर वह तो सब कुछ अगले सालके लिए छोड चुका था। इसीलिए जो कुछ पैसे अम्मीने उसे दिये थे उन्हे ठिकाने लगाकर वह घर लौट आया। देखा सेवैयाँ बन चुकी हैं। गरम गरम, लम्बी-लम्बी सेवैयाँ उसे बडी खूबसूरत लगी। बीच-बीचमे गोलेकी फाक पडी थी। शक्करकी वजहसे दूध कुछ पीला हो गया था। उसका दिल बाग-बाग हो उठा। फातिमाने प्यारसे उसे देखा और कहा, "मेरे बच्चे! जा कटोरा ले आ और खालाके घर सेवैयाँ दे आ। फिर मामूके घर जाना और फिर "

अहमद बोला, "सबके घर देते है ?"

"हाँ बेटा! वे भी तो हमे भेजेगे।"

'अच्छा अम्मी, मै अभी दे आता हूँ।"

और फातिमाने दोनो कटोरोमे सेवैयाँ भरी और उनपर रूमाल ढक दिया कि कही चील झपट्टा न मार ले। अहमद पहले एक कटोरा उठाकर चला लेकिन जैसे ही वह दरवाजेसे बाहर हुआ उसे एक बात याद आ गई—सेवैयाँ सबसे पहले दिलीपके घर देनी चाहिए। उसने मुझे दूध दिया था, अपने हिस्सेका दूध!

बस, उसने अपना रास्ता पलटा। खालाके घर न जाकर वह दिलीप-के घरकी ओर चला। सोचने लगा, अम्मी सुनेगी तो बडी खुश होगी।

बेचारी बीमार है। इसलिए दिलीपका नाम भूल गई। नही तो . ।
यही सोचता हुआ वह खुशी खुशी दिलीपके घर पहुँचा। दरवाजा बन्द था। कुछ देर वह असमजसमे सकुचा हुआ खडा रहा फिर हिम्मत करके आवाज दी, "दिलीप।"

कोई नही बोला।

फिर पुकारा, "दिलीप।"

इस बार किसीने जवाब दिया, "कौन है?"

और साथ ही कहनेवाला बाहर आ गया। वह दिलीपका बडा भाई था। उसने अचरजसे अहमदको देखा और पूछा, "क्या चाहते हो?

अहमद झिझका, फिर सँभलकर बोला, "दिलीप है?"

"नही।"

"उसकी माँ?"

"माँ? माँसे तुम्हारा क्या मतलब?"

अहमदने कहा, "मेरा नाम अहमद है। मै दिलीपके साथ पढता हूँ। सबेरे उसने मुझे अपने हिस्सेका दूध दिया था।"

दिलीपका भाई मुस्कराया। तब तक दिलीपकी माँ और चाची भी वहाँ आ गई थी। भाईने कहा, "तो फिर?"

"जी सेवैयाँ लाया हूँ। इन्होने (माँको बताकर) कहा था कि "
अहमद अपना कहना पूरा करे कि दिलीपके भाई बडे जोरसे हँस पडे, कहा, "भोले बच्चे! जाओ अपने घर लौट जाओ।"

चाची बोली, "हम क्या तुम्हारी सेवैयाँ खा सकते है। हमे क्या अपना ईमान बिगाडना है।"

माँने निहायत नरमीसे कहा, "बेटे! मैने तुमसे मजाक किया था। हम तुम्हारे घरकी सेवैयाँ नही खा सकते।"

अहमद एकदम सकपका गया। उसके छोटेसे दिलपर चोट लगी।

फिर भी उसने हिम्मत बाँधकर कहा, "क्यो नही खा सकते ? हमने भी तो आपका दूध लिया था।"

अब भाईने उसे समझाया, "बच्चे ! तुम बहुत अच्छे हो। परमात्मा तुम्हे खुश रखे। लेकिन हम हिन्दू है, और हिन्दू लोग तुम्हारे हाथका छुआ खाना पाप समझते है।"

अहमद पाप पुण्य नही समझता था। उसे हिन्दू मुसलमानके इतने गहरे भेदका अभी तक पता न था। वह सिर्फ दिलीप और उसकी माँकी मोहब्बतकी बात सोच रहा था। लेकिन यह बात सुनकर उसका दिमाग चकराने लगा। वह खिसिया गया, और जैसे ही घर जानेको मुडा उसका हाथ काँपा। सेवैयोसे भरा कटोरा ज़ोरकी आवाज़ करता हुआ वही उसी चौकीपर गिर पडा, जिसपर सवेरे सवेरे दिलीप और दिलीपकी माँने दूधके रूपमे अपनी मोहब्बत अहमदके दिलमे उँडेल दी थी। सेवैयाँ चारो तरफ फैल गई और अहमदकी मोहब्बत पैरोसे रौंदे जानेके लिए वही पडी रह गई।

सहसा यही आकर कहानीको रुक जाना पडा। गाडी स्टेशनपर आ गई थी और मुझे यही उतरना था। डिब्बेकी सजीदगीको भग करता हुआ मैं अपना बैग उठाकर नीचे उतर गया। और नीचे आकर उनकी तरफ देखते हुए मैंने कहा, "मै नही जानता आपकी कहानी कहाँ खतम होगी पर इतना ज़रूर जान गया हूँ, आप ही अहमद हैं।"

अहमद साहब मुस्कराये, उन्होने कहा, "आपने ठीक पहचाना, मै ही वह लडका हूँ।"

मैंने पूछा, "लेकिन सच कहना, मोहब्बतकी वह लकीर क्या आज बिलकुल ही मिट गई है ?"

वह उसी तरह मुस्करा रहे थे बोले, "मेरे दोस्त ! इस दुनियामे मिटनेवाला कुछ भी नही है। मोहब्बत तो हरगिज नही। सिर्फ हमारी गफलतसे कभी कभी उसपर परदा पड जाता है।"

"तो", मैंने कहा, "विश्वास रखिये, उस परदेको फाड़ देनेमें हम कोई कसर उठा न रखेंगे।"

इतना कहकर मैं चला आया। कहानी शायद आगे बढ़ी होगी। पर मेरे लिए यह अधूरी कहानी ही दिलका दर्द बन बैठी है। रातके सन्नाटेमें कभी-कभी मेरे दिलमें इतनी टीस उठती है कि क्या बताऊँ ..?"

१९४६]

■ ■
■

सम्बल

कर्नल सिहका पूरा नाम सरदार इन्द्रसिह था। मै जब पहली बार उनसे मिला था, तो वे आठवी सिख रेजीमेटमे नये-नये लेफ्टिनेट बने थे। वे उन व्यक्तियोमे थे जो प्रथम प्रभावमे ही सबको अपना बना लेते ह। उनका शरीर दृढ और नेत्र विश्वासप्रद थे। वे अपनी दाढी-मूछ कुछ इस प्रकार व्यवस्थित करते थे कि उनके सैनिक होनेमे किसीको सन्देह नही रहता था। उनकी लबाई साधारणसे अधिक थी। वे सब दृष्टियोसे सेनाके योग्य थे। उनकी मस्ती, उनका दबगपन और अपने कामके प्रति उनकी भक्ति—ये सब गुण उनको अनायास ही लोकप्रिय बनानेके लिए काफी थे। और सचमुच वे लोकप्रिय थे भी। उनके मित्रोकी सख्या असाधारण रूपसे अधिक थी। वे मेरे मित्रके मित्र थे और उन्हीके घर पर हमारा पहलीबार मिलना हुआ था, पर अलग होनेसे पूर्व हम दोनो मित्र हो चुके थे। उनकी देशभक्ति और विशेषकर तत्कालीन राजनीतिक अवस्था पर उनके सुलझे हुए विचार जानकर मुझे खुशी हुई थी। उन्होने मुझसे कहा था, "मै जानता हूँ, हिन्दुस्तान बहुत जल्द आजाद होगा, और तब हमे उसकी रक्षा करनेका अवसर मिलेगा।"

मैने उत्तर दिया था, "आप लोग चाहे तो यह देश क्षणभरमे स्वतन्त्र हो सकता है।"

वे हँसे थे, "हाँ, हो सकता है, पर आज उस स्वतन्त्रताको सँभालनेके लिए कोई तैयार नही है। फिर भी देश-भक्तिके तूफानसे सेना अछूती नही है। कब क्या होगा, यह कोई नही जानता।"

वे जब चले गये थे, तब मैने अपने मित्रसे उनकी प्रशसा करते हुए कहा था, "तिवारी, तुम्हारे ये नये सैनिक मित्र निस्सदेह तोपके खाद्यमात्र नही है।"

तिवारीने मुस्कराकर कहा था, "सेनाके बारेमे तुम कॉग्रेसवालोने गलत धारणा बना ली है। तुम समझते हो कि देशभक्तिपर केवल तुम्हारा ही अधिकार है। सिहसे बाते करो तो तुम्हे पता लगेगा कि वह कितना सुलझा हुआ और प्रगतिशील है, परन्तु दुःख यही है कि जहाँ उसमे इतने गुण है, वहाँ उसमे एक बडा दुर्गुण भी है।"

"वह क्या?" मैंने उत्सुकतासे पूछा था।

"सिह शराब पीता है।"

"वह तो सभी सैनिक पीते हैं।"

"हाँ पीते है पर वह कुछ अधिक पीता है।"

"उसकी बातोसे और उसके बर्तावमे तो इस बातका आभास नही मिलता?"

"उसका भी एक कारण है।"

"क्या?"

"उसकी पत्नी।"

"मै समझा नही।"

"मि० सिहकी पत्नी बहुत ही शान्त और समझदार स्त्री है। मैंने कभी उसे अपने पतिसे लडते नही देखा। शराब पीकर जब वह अट शट बकने लगता है तब वही उसकी सभाल रखती है। वह उसके पीछे-पीछे जाती है और उन लोगोसे, जिनके साथ उसका पति नशेमें दुर्व्यवहार कर बैठता है, क्षमा मॉगती है। सच कहता हूँ, कान्त, वह एक सच्चे मित्रकी तरह, उस मित्रकी तरह जो एक साथ माँ और सखाका हृदय रखता है, सिहकी देख-भाल करती है।"

"और फिर भी मि० सिहपर उसका कोई प्रभाव नही पडता?"

"पडता है, कान्त। तुमने अभी तो कहा था कि उसकी बातो और बर्तावसे इस बातका आभास नही मिलता। यह सब उसकी पत्नीके कारण

ही है। सिहने स्वय एकबार मुझसे कहा था कि वह शराव छोडना चाहता है।"

"फिर ?"

"पर नही छोड पाता।"

"क्यो ?"

"क्योकि यदि उसने शराव पीनी छोड दी, तो उसकी पत्नी उससे प्रेम करना छोड देगी।"

यह बात सुनकर मै सहसा ठहाका मारकर हँस पडा था। तिवारीने भी उसमे योग दिया था। पर कुछ भी हो, मि० सिह मुझे याद रखने लायक व्यक्ति जान पडते थे। वहाँसे लौट आनेके बाद भी मै अपने मित्रसे अकसर उनकी कुशल-क्षेम पूछ लिया करता था। तिवारीके पत्रोमे और सब तो ठीक रहता था पर एक शिकायत बराबर रहती थी कि वह भला आदमी दिनपर दिन अधिक शराब पीने लगा है। मुझे भी मि० सिहसे कुछ उन्सियत हो गयी थी, लिहाजा यह बात मुझे भी चुभती थी। एक-आध बार मैने यह बात उसे लिखी थी, पर वह बडी खूबीसे उस बातको उडा जाता था और मुझे किसी लम्बे राजनीतिक विवादमे फँसाकर, उस उपेक्षाको महसूस भी नही करने देता था। पहली मुलाकातके लगभग तीन वर्ष बाद मुझे उससे दुबारा मिलनेका अवसर मिला। मै तब अपने मित्रके घर बैठा हुआ उसकी चर्चा कर रहा था कि पासके मकानपर शोर सुनाई पडा। तिवारीने एकदम कहा, "कान्त, सिह आया है और उसने शराब पी हुई है। चलो, तुम्हे मिला दूँ।"

यह कहकर वह उठा और बाहर चला गया। मै चुम्बककी तरह उसके साथ लगा हुआ था। शोर पास आने लगा और गालियाँ सुनाई देने लगी। बाहर आकर क्या देखता हूँ कि मि० सिह मतवालेकी तरह एक फिटनको खीचे ला रहे है। उनके नेत्र रक्तवर्ण है। साफा खुलकर कन्धोपर खिसक आनेका प्रयत्न कर रहा है, और उसके बीचमेसे केशोमे लगा हुआ कघा साफ

दिखाई दे रहा है। वे निरन्तर कह रहे है, "साले चोर! दिन दहाडे डाका डालते हैं! तुम्हारे वापकी गाडी है, जो उठे और खोल आये! मैं एक-एकको समझ लूगा! एक-एकको शूट न कर दिया तो सिह न कहना!"

और घरवाले खडे थे मौन, स्थिर, शान्त—जैसे यह जो हो रहा था वह होना ही था। केवल तिवारीने आगे वढकर कहा, "मि० सिह, कौन ले आया आपकी गाडी?"

मि० सिहने गाडी रोककर घोडेकी तरफ ध्यान दिया। उसे पकडकर फिटनमे जोडा और फिर, जैसे तिवारीके प्रश्नोको उन्होने सुना ही नही वे गाडीपर जा बैठे। वे चलते-चलते बोले, "है कोई माईका लाल जो मुझे रोके?"

और सचमुच किसीने उन्हे नही रोका। वे शानसे घोडेको हाँककर ले गये। अचरजकी वात यह कि तनिक भी नही लडखडाये, वल्कि गाडी चलनेपर वे मुडे और मि० विजसे, जिनके गराजसे उन्होने गाडी निकाली थी, कहा, "ओय विज़! इस वार माफ करता हूँ, आइन्दा ऐसा किया तो गोली दाग दूगा, गोली, समझा? कमीना कहीका! गाडी खोल लाया!"

उनके जानेके कई क्षण वाद तक हम सव वही खडे रहे, फिर वडी गभीरतासे गरदन हिला-हिलाकर कुछ लोग चले गये! एक वन्धुने हँसकर विजसे कहा, "वाह विज! तुमने खूव गाडी खरीदी। कैसे आरामसे ले गया, और अब कही तोडकर रख देगा!"

विजने गरदन हिलाकर कहा, "यही तो वात है, पर कुछ कर सकना भी तो मुमकिन नही है। सरदारनीसे डर लगता है।"

उन वन्धुने हाँमे हाँ मिलायी, वोले, "कुछ समझमे नही आता। सरदारनी इतनी भली औरत है, पर इसकी शराव नही छुड़ा सकती।"

"नामुमकिन! एकदम नामुमकिन! मै आज तुमसे कहे देता हूँ", विजने कुछ कटोरतासे कहा, "यह शराव एक दिन इसको पीकर छोडेगी। विलकुल निचोडकर रख देगी!"

पर वह अपनी वात पूरी कर पाते इसके पहले ही एक नारीने वहाँ प्रवेश किया। वह अभी युवती थी। और साधारणतया पजाबी नारियाँ जितनी सुन्दर होती है उतनी सुन्दर भी थी। उसकी सलवार, सलूका और दुपट्टा सब श्वेत रगके थे। वह तब अशान्त दिखाई देती थी। व्याकुलतासे पूर्ण उसके वडे-वडे नेत्र किसीको खोज रहे थे। उसने आते ही पूछा, "क्या सरदारजी इधर आये थे ?"

एक वन्धु बोले, "जी हाँ, आये थे।"

दूसरेने कहा, "और वे मि० विजकी गाडी खोल ले गये।"

"ओह।" उसने दुखित होकर जवाब दिया, "मुझे इसी वातका डर था। वे किधर गये है ?"

उन वन्धुने गाडी जानेकी दिशामे सकेत करते हुए कहा, "उधर।"

वह शीघ्रतासे आगे बढी, फिर मुडी और विजसे बोली, "मि० विज, मुझे बहुत अफसोस है। ईश्वरके लिए आप कोई खयाल न कीजिए! मै बहुत जल्दी आपकी गाडी ले आती हूँ।"

मि० विज शीघ्रतासे वोले, "नही-नही, कोई वात नही, आप उन्हें सभाले, कही चोट न खा जाएँ।"

सरदारनी उसकी वात पूरी होनेसे पहले ही मोडपर गायब हो चुकी थी। कुछ लोग उसके पीछे-पीछे गये, कुछ वही खडे रहे। मैने तिवारीसे पूछा, "क्या वह हमे इसी तरह कहता है ?"

तिवारी बोला, "इससे भी अधिक, कान्त! वह तो सरदारनी उसे अन्दर रखती है, पर जब कभी वह बाहर आ जाता है—और वह अकसर वाहर आ जाता है—तब एक आफत बरपा कर देता है। मार-पीट तक हो जाती है। तब वेचारी सरदारनी सबसे क्षमा-याचना करती फिरती है।"

"वडी वुरी वात है," मैने दुखी होकर कहा।

"वुरी तो है ही। आज ही देखो, वह विजकी गाडी खोलकर ले गया।

वास्तवमे यह गाडी उसीकी थी, और कल ही उसने इसे विजके हाथ बेचा था।"

वह अपनी बात पूरी करे कि गाडी उधर ही आती दिखाई दी। सरदारनी उसे चला रही थी और सरदार पास ही सीटपर उसका सहारा लिये बैठा था। असलमे उसने अपने शरीरका सारा बोझ उसीपर डाल रखा था। विजके सामने आते ही वह जैसे कूदनेको हुआ। वह लडाईकी चुनौती दे रहा था, पर सरदारनीने एक हाथसे उसे अपनी ओर खीच लिया। बोली, "सुनिए तो, वह गाडी नही मॉगता।"

"नही माँगता ?"

"नही जी! वह तो इसे एक दिनके लिए मुझसे मॉगकर लाया था। आप बैठे रहिये।"

सरदारने एक बार फिर बन्धन तोडनेका प्रयत्न किया, पर सरदारनीने पूरी शक्तिसे उन्हे रोके रखा ओर शीघ्रतासे गाडी चलाकर ले गई। चली गयी तो लोग जगे और तरह-तरहकी बाते करने लगे। किसीने सहानुभूति प्रकट की, किसीने क्रोध। जो जानते थे वे दुःखी थे, जो अपरिचित थे वे क्रुद्ध। तिवारीने गरदन हिलाकर कहा, "बेचारी सरदारनी! वह न हो तो, क्या हो ?"

मै जैसे सो रहा था, एकदम जगकर बोला, "क्यो तिवारी, मि० सिहको सब कुछ याद रहता है ?"

"प्राय नही रहता।"

"दूसरे लोग तो चर्चा करते होगे ?"

"कोई विशेष चर्चा नही होती, क्योकि उसकी पत्नीका व्यवहार बहुत सुन्दर है। बेचारी घर-घर जाकर सबसे क्षमा-याचना करती है। इसके अतिरिक्त सिह स्वय अपने काममे बडा चतुर है।"

बाते करते-करते हम लोग अन्दर चले आये। अन्धेरा हो चला था। मै अपने दूसरे काममें लग गया, पर कोई एक घटे बाद मैने फिर सरदारनीकी

आवाज सुनी। कुतूहलके कारण मै अकेला वाहर आया, देखता हूँ सरदारनी गाडी लिये खडी है।

तभी मि० विजने वाहर आकर कहा, "आपने अभी क्यो तकलीफ की ? सबेरे आ जाती।"

"तकलीफ़ तो आपको हुई, मि० विज! सचमुच मुझे वहुत दु ख है। आप कृपाकर उन्हे क्षमा कर दीजिये।"

सरदारनीने वडी ही विनम्र और तरल वाणीमे ये शब्द कहे। फिर वह बोली, "क्या करूँ ? वहुत समझाती हूँ। वे भी बहुत कोशिश करते हैं, पर वक्त आनेपर वे जैसे वेबस हो जाते है। आप कुछ ध्यान न कीजिये, मि० विज। अव ऐसा नही होगा।"

मि० विजने कहा, "नही-नही, मिसेज सिह! मै सव कुछ जानता हूँ। मुझे कुछ खयाल नही है।"

"आपने क्षमा कर दिया न ?"

मि० विज हँस पडे, "जी हाँ!"

मिसेज सिह मुझसे परिचित थी। वे मेरे पास आयी। मैने पूछा "मि० सिंह अव तो ठीक है ?"

"हाँ, अब वे सो रहे है।"

"वे वहुत भाग्यशाली है।"

"क्या ?"

"जी हाँ! वे वहुत भाग्यशाली हैं। उन्हे आप जैसे पत्नी मिली हैं। नही तो ।"

"नही नही", मिसेज़ सिंहने शीघ्रतासे कहा, "उनमे एक यही कमजोरी है, वैसे वे लाखोमे एक हैं।"

"मै जानता हूँ मिसेज सिह। मै जानता हूँ। इस देशको मि० सिंहसे बहुत आशाएँ है।"

"वे अव कप्तान होनेवाले है," मिसेज सिह मुस्करायी।

"हॉ, तिवारीने मुझे बताया था। मै कल आकर उन्हे बधाई दूगा। पर मिसेज सिह !"

मै झिझका। मेरा साहस जवाब दे रहा था। मिसेज सिह अचरजसे मुझे देखते हुए बोली, "कहिए।"

"आप कुछ दिन उनसे अलग रह सके तो अच्छा है।"

मै एकदम बोला और चुप हो गया। पर मिसेज सिह उसी शान्तभावसे बोली, "ओह, मि० कान्त ! आप मेरे पतिको नही जानते। मै जानती हूँ, तब तो वे बिलकुल बिगड जायंगे। बिलकुल। कोई देखनेवाला नही रहेगा।"

मैंने सिर हिलाया, "हॉ, यह तो है, पर फिर भी. ।"

"मै कहती हूँ, मिस्टर कान्त", मिसेज सिहने मेरी बात सुने बिना और भी बलपूर्वक कहा, "मेरे कारण और लोग भी उनका ध्यान रखते है। मै नही रहूँगी, तो सब मजाक उडाने लगेगे।"

मै कुछ जवाब न दे सका। वस्तुत मिसेज सिहने मुझे जवाब देनेका अवसर ही नही दिया। वे बोली, "हॉ, अब वे कप्तान होनेवाले है। शायद कुछ परिवर्तन हो।"

मुझे हॉमे हाँ मिलानी पडी और दो-चार इधर-उधरकी बाते करके वे चली गई। मुझे भी लौटना था। अचानक तार आ जानेके कारण मै मि० सिहसे मिल भी नही सका। तिवारीके पत्रोसे कभी-कभी उनका समाचार मिलता रहता था। वे कप्तान बन चुके थे। और शराब पीनेकी उनकी आदत उनके गुणोके साथ प्रगति कर रही थी। साथ ही यह भी आश्चर्यजनक बात थी कि उनके इस अवगुणका उनके गुणोपर कोई प्रभाव नही पडा था, फिर भी मुझे उनकी अवस्थापर खेद था और मै समझता था कि किसी दिन उनका पतन हो सकता है। पर मै किसी निर्णयपर पहुँचूँ इससे पूर्व मुझे पता लगा कि कैप्टेन सिह दूर दक्षिणमे चले गये है। फिर बहुत दिनोतक उनका कोई समाचार नही मिला। इधर जब मै तिवारीको

पत्र लिखने ही वाला था तभी अचानक एक दिन उसका एक लंबा पत्र मुझे मिला। उसने लिखा था, 'कान्त, तुम्हे आज मै एक बुरी खबर दे रहा हूँ, गत सप्ताह सिहकी पत्नीका देहान्त हो गया।'

मुझे विश्वास न आया। मैंने उस पत्रको फिर पढा। कई बार पढा। मिसेज सिह निस्सदेह मर चुकी थी। मै कॉप उठा। मेरे नेत्रोके सामने उस अद्‌भुत नारीका चित्र उभर आया। उसकी सुशीलता, सुदृढता और शालीनता मेरे हृदयपर अकित थी। वह टीसने लगी। मै रो पडा। मुझे लगा, मानो मेरा अपना प्रिय चल बसा है। जिन परिस्थितियोमे उसकी मृत्यु हुई थी उससे मुझे और भी सदमा पहुँचा। बात यह थी कि बहुत दिन बाद तिवारी और सिह आदि अनेक मित्र एक स्थानपर मिले थे। उन्होने एक दिन नदी किनारे पिकनिक करनेका प्रबन्ध किया। तिवारीने लिखा था, 'मिसेज सिहने सब प्रबन्ध अपने आप किया। खाने-पीनेका सारा सामान अपने आप बनाया और बनवाया। सब लोग पहुँच चुके थे। अन्तिम फेरेमे मै तथा सिह और मिसेज सिह सामान लेकर जा रहे थे। मै जीप चला रहा था। मस्तीका आलम था। सब कहकहे लगा रहे थे। कैप्टेन सिहने उस दिन शराब न पीनेकी प्रतिज्ञा की थी। इस बातको लेकर हम लोगोमे विशेष मजाक हो रहा था कि तभी मैने देखा—सडकपर जाने वाले कारवॉमेसे दो ऊँट बिगड गये है। मै चौका और मैने जीपको बचानेकी कोशिश की, पर जिधर मै मुडा उधर ही ऊँट दौडे। मै दूसरी ओर मुडा पर ऊँटोने मेरा पीछा नही छोडा। परिणाम यह हुआ कि मै जीपको न सभाल सका। वह एक पेडसे टकराकर उलट गई। मिसेज सिहके अतिरिक्त सब लोग दूर जा पडे। पर वे नीचे फँस गयी। और कुचली गयी। चोट सबको लगी, पर वह भयकर नही थी। किसी तरह हम लोगोने मिसेज सिह-को अस्पताल पहुँचाया। वे बेहोश थी और उसी बेहोशीमे तीसरे दिन उनकी मृत्यु हो गई। कान्त, मै तुमसे क्या कहूँ! तुम्हे विश्वास नही आएगा। कैप्टन सिह अपनी पत्नीको बेहद प्रेम करते थे। तुम जानते हो,

उनके कोई संतान नही थी। उनकी माँने अनेक बार उनसे दूसरा विवाह करनेको कहा पर उन्होने सदा ही दृढतासे ऐसे प्रस्तावोका विरोध किया। उन्होने एक दिन मुझसे कहा था, "तिवारी! इस देशको आदमियोकी नही, प्रेमकी जरूरत है। मै भाग्यशाली हूँ। मुझे प्रेम मिला है। उसे छोडकर मै गुलामोकी सख्या बढाऊँ। ऊँहूँ! यह कभी नही होगा!" और उन्होने विवाह नही किया। तुम कल्पना कर सकते हो, उन्हे कितना सदमा पहुँचा होगा। वे प्रस्तर-प्रतिमा बने हुए है। यत्रवत् सब काम करते है, पर उनकी आँखोसे एक बूद आँसू नही टपका है। वे किसीसे बाते करना पसन्द नही करते। उन्हे मानों इस अनहोनीपर विश्वास नही आ रहा है। विश्वास तो मुझे भी नही आता। और जब मै यह सोचता हूँ कि यह सब मेरे हाथोसे हुआ, तो सच कहता हूँ मर जानेको जी चाहता है। कल मै सिहके पास गया था। वहाँ जाकर मै अपनेको न रोक सका, रो पडा। मैने कहा, "सिह, मैने तुम्हारी पत्नीकी हत्या की है। तुम मुझे मार डालो।" वह कुर्सीपर बैठा हुआ था। बैठे-बैठे ही बोला, "तिवारी, यदि जीपको वाणी मिले तो शायद वह भी यही कहेगी जो तुमने कहा है।" और वह चुप हो गया। उसने उस एक वाक्यमे बहुत कुछ कह दिया था। मै कुछ जवाब न दे सका। वही फिर बोला, "तिवारी, यह सब क्षणिक आवेश है। कुछ दिन बाद हम तुम सब कुछ भूल जायेगे। यहाँतक कि मै फिर शराब पीने लगूगा और मुझे फिर एक पत्नी मिल जाएगी।"

वह पत्र इसी प्रकारकी दार्शनिक-सी लगनेवाली बातोसे भरा हुआ था। मै उस रात बहुत देरतक जागता हुआ उनपर विचार करता रहा। मैने कै० सिहको सवेदनाका एक लबा पत्र लिखा। मै स्वय उनके पास जाना चाहता था, पर कोशिश करनेपर भी तब अवकाश न पा सका। उसके कोई तीन महीने बाद मै उनसे मिलने गया। तब भी वे सदाकी तरह शान्त थे। उनके नेत्रोमे वही पहलेवाली ज्योति विद्यमान थी, परन्तु उसमे प्रवाह नही था। शोले-से उठते थे, जैसे धौकनेपर लुहारकी भट्टीमे उठते है।

मुझे देखते ही वे उठे, बोले, "आओ कान्त, आओ। तुम्हारा पत्र मुझे मिल गया था, और मैं कहूँगा कि मुझे उससे अपूर्व शान्ति मिली थी।"

मैंने धीरेसे कहा "शान्ति अपने अन्दर है, कैप्टेन। केवल वीर पुरुष उसका उपयोग कर सकते हैं।"

कै० सिह मुस्कराये। बोले, "अपने अन्दर तो सब कुछ होता है, कान्त। पर कोई बतानेवाला न हो तो 'दिये तले अन्धेरा' वाली बात हो जाती है। सुरजीत इतने वर्ष मेरे साथ रही, पर मै उसे पहचान नही पाया। कभी उसका कहना नही माना। सदा शराब पी और उसे तग किया। अब वह नही है, तो चाहता हूँ कि शराब न पिऊँ।"

और वे हँस पडे। बोले, "है न यह ढोग? तीन महीनेसे मैं इस ढोगको निभा रहा हूँ। मै जानता हूँ, मै एक दिन शादी करूँगा और शराब भी पिऊँगा। पिये बिना रह ही नही सकता। फिर भी सोचता हू, कुछ दिन न पीकर देख लू। वैसे भी पुरानी शराबमे अधिक स्वाद होता है।"

मै चकितसा उनकी बात सुन रहा था। बोला, "तुम शराब पिये बिना नही रह सकते।"

"रह क्यो नही सकता?" वे बोले, "पर तभीतक, जबतक कोई सँभालनेवाला न हो। जैसे ही मुझे सँभालनेवाला मिला, मैं फिर पीने लगूगा। उसी दिनके लिए मैंने शराब रख छोडी है।"

यह कहते-कहते वे उठे और मुझे एक आलमारीके पास ले गये। मैंने देखा उसमे कई बोतले सुरक्षित ढगसे रखी हुई है। उन्होने हँसकर कहा, "समयके साथ-साथ इस शराबका मूल्य बढता रहेगा, कान्त। एक दिन जब मेरी शादी हो जायगी, तब मै इसे पिऊँगा। उस दिन मैं सब कुछ भूल जाऊँगा, सब कुछ। सब लोग भूल जाते है। भूलना स्वभाव है।"

मैंने कहा, "बेशक कैप्टेन, यह सब स्वाभाविक है, और भूलनेका स्वभाव न हो तो कोई जिए कैसे?"

"बेशक, बेशक। कोई जिए कैसे? जीनेके लिए भूलना जरूरी है,

बेहद जरूरी।" उन्होने उत्साहपूर्वक कहा पर दूसरे ही क्षण सहसा उनका स्वर गिरने लगा। वे फिर कुरसीपर आ बैठे। कई क्षण चुप रहे। फिर बोले, "क्यो, कान्त, कभी-कभी किसीकी याद भी तो मनुष्यकी शक्ति बन जाती है ? है तो यह आदर्शवाद और मै आदर्शवादको नही मानता। पर फिर भी वह शक्तिदायक है।"

मैने कहा, "आदर्शवादके पैर जब धरतीपर लग जाते है, तब वह शक्ति बन जाता है।"

"क्या मतलब ?"

"यही कि जब मनुष्य आदर्शको जीने लगता है, तब वह बन्धन न होकर सम्बल हो जाता है।"

सहसा उनकी आँखे चमक उठी। उन्होने मेरी ओर देखते हुए कहा, "बिलकुल यही बात है, पर प्रश्न जीनेका है। बहरहाल, मुझे इन बातोकी विशेष चिन्ता नही है। तुम आ गये तो पूछ लिया, नही तो हम सैनिक तो जीनेमे विश्वास करते है। और अब तो युद्धके बादल छा रहे है, इन बातोको सोचनेका अवकाश ही नही है।"

उनका कहना ठीक था। तब विश्वमे युद्धकी पुकार मची हुई थी। उसके कुछ समय बाद अचानक एक दिन दूसरा विश्व-युद्ध आरभ हो गया। तब सात सालतक हम एक-दूसरेका कोई समाचार नही पा सके। इस बीचमे मै दो-बार---तीन वर्षसे कुछ ऊपर सरकारका मेहमान रहा, और सिह अफ्रीकाके रेगिस्तानमे शोहरत पाकर लौटे। तिवारी मध्य एशियामे सॉस्कृतिक मोर्चेपर डटा हुआ था। १९४७ मे जब एक ओर घृणा रक्त उलीच रही थी और दूसरी ओर स्वतन्त्रताकी देवी भारतके आगनमे प्रवेश कर रही थी, हम सब मित्र एक-दूसरेसे मिले। मि० सिह अब लेफ्टिनेट कर्नल बन चुके थे और तिवारी मेजर। अचानक एक दिन दिल्लीमे उन्होने मुझे ढूढ निकाला। यद्यपि दुनिया पलट चुकी थी, परन्तु सिह बिलकुल वैसे ही थे। उन्होने उसी मस्तीसे मेरे कन्धोको झकझोरा, "हलो कान्त!

तुम जीत गये। किसी भी कारणसे हो, तुम्हे आजादी मिली है। लेकिन," उन्होने हँसते हुए कहा, "तुम अव अकेले उसकी रक्षा नही कर सकते।"

मैने उसी मस्तीसे जवाब दिया, "तुम जो हो तुम्हे अव उसकी रक्षा करनी है।"

"वेशक, वेशक, अव हम और आप एक ही नावमे है।"

"लेकिन उस नावके खिवैया तुम हो।"

"और मार्ग दिखानेवाले तुम।"

इस तरह एक-दूसरेकी प्रशसा करके हम सब खूब हँसे। कुछ देर इधर-उधरकी बाते करनेके वाद मैने पूछा, "लेकिन हॉ, तुम सुनाओ न। तुम्हारी शराबका स्वाद कैसा रहा?"

"शराव?" वे खूब हँसे, "वस अब उसका अन्त आ पहुँचा है। मै वहुत शीघ्र शादी करनेवाला हूँ।"

"अभी नही की?"

"बस अव हुई समझो। वह तो होगी ही। हमलोग ब्रह्मचर्यमे विश्वास नही करते। वह अप्राकृतिक है।"

और वे फिर हँस पडे। पर मैने देखा—उस हँसीमे स्वाभाविकता नही है। एक प्रकारकी वनावट है, और इसीलिए वह अपने पीछे मस्तीकी नही, वल्कि वेदनाकी लहर छोड जाती है। मै चुप हो गया और तब बोलनेका अधिक काम उन्हीको करना पडा, पर जब चलनेका समय हुआ तव मै अपनेको न रोक सका। पूछ बैठा, "क्यो मित्र! एक बात बताओगे।"

"पूछो।"

"क्या तुमने इन आठ वर्षोमे शराब नही पी?"

फिर वही वेदना-भरी हँसी, "कैसे पीता? कोई सँभालनेवाला तो था ही नही!"

उसके बाद मैने कुछ नही पूछा।

तव आगे पढे बिना मैंने अखवार हाथसे रख दिया; और श्रद्धानत होकर मन ही मन मिसेज सिहको प्रणाम किया। जीते-जी चाहे उसने पतिकी कितनी ही सेवा क्यो न की हो, पर मरनेके बाद वह निस्सदेह उसकी-जीवित-शक्ति बन गयी थी।

१९५२]

■ ■
■

इस कहानीके पात्र व घटनाए सब कल्पित है।

जीवन-दीप

संघमित्राने क्षणभरके लिए भी अपनी दुर्बलताको अशोकके सामने प्रकट नही होने दिया, तब भी नही, जब अपने स्वभावके अनुसार अशोकने कलिंगकुमारको सूर्योदयसे पूर्व प्राणदंड दिये जानेकी आज्ञा दी, लेकिन एक बात वह स्पष्ट रूपसे देख रही थी कि कई दिनसे अशोकके स्वभावमे परिवर्तन होता आ रहा है। रक्त-पिपासु अब रक्तसे कुछ भय खाने लगा है। अपने हाथोको रक्तमे सना देखकर वह रह-रहकर चौंक उठता है। विशेषकर कलिंगकुमारको मृत्युदंड देनेके बाद, तो उसके मस्तिष्ककी अवस्था बहुत ही विचित्र हो गई है।

यही सोचते-सोचते संघमित्रा कुछ आत्मविभोरसी हो उठी। कलिंगकुमारका नाम मस्तिष्कमे आते ही स्मृतिके कुछ बन्द द्वार खुल गये। पुरानी बाते हृदय-पटलपर उभर आई। तब सुन्दरी संघमित्राका अरुणाभावाला मुख रक्तिम हो उठा, नयन प्रेमकी पीड़ासे मदिर हो आये। निश्वासने वक्षस्थलको आलोड़ित कर दिया। कुमारकी मूर्ति पृथ्वी और आकाशको घेरकर उसके सामने खड़ी हो गई—प्रशस्त ललाट, उन्नत वक्षस्थल, किंचित श्यामल वर्ण, अदम्य विश्वाससे पूर्ण नयन और आजानबाहु, एक साथ रक्षा और दंडके प्रतीक। उस दिन सिंहका आखेट करते समय स्वयं सम्राट्ने कहा था, 'कुमार! तुम्हारा हस्तलाघव देखकर हम प्रसन्न हुए, तुम वीर हो।' कुमारने तब किंचित मुस्कराहटमे मस्तक नवाते हुए उत्तर दिया था, 'मगध-सम्राट्का हृदय विशाल है।'

उस समय संघमित्राका रोम-रोम जैसे उद्वेलित हो उठा था। उसने अपने नयनोमे समस्त तृष्णा संचित करके कुमारको देखा था, ऐसे जैसे उसे अपने अन्तरमे सजो लेगी। एकान्त पाकर उसने जब स्वयं कुमारकी

वीरताको सराहा था, तव वह यौवनका प्रतीक, मदिर हास्य बखेरता हुआ, बोला, "राजकुमारी! मुझे खुशी है, मगधके लोग वीरोका सन्मान करना जानते है।"

राजकुमारीने उत्तर दिया, "वे स्वय वीर जो है।"

"और सुन्दर भी।"

"सुन्दर ?"

"हाँ।"

"सच ?"

"क्या तुम्हे साक्षी देनी होगी। अपनेको ही देखो। तुम्हारे नयन शरतकी जोत्स्नाको लजाते है। तुम्हारा हास्य हिम-शिखरके प्रभातसे अधिक मनोरम है। तुम्हारी वाणीमे मलयका सगीत है और तुम्हारी गतिमे यौवनका नृत्य।"

और कहकर राजकुमार हँस पडा था। सघमित्रा तव जैसे सुध बुध खोकर प्रेमल मूर्तिसी उसे देखती ही रह गई थी। आज भी वह खोई खोई-सी हो गई, सोचने लगी—यह सब क्या है ? यह आकर्षण क्यो है ? हृदयमे यह धडकन कैसी है ? यह स्पन्दन किसका है ?

तव किसीने कहा था, 'यह प्रेम है।'

'प्रेम !'

सघमित्रा सहसा जाग उठी—प्रेम। वह शत्रुसे प्रेम करती है। शत्रु उसके हृदय-सिहासनपर आ बैठा है। शत्रु! उसके भाईका शत्रु! उसके राजाका शत्रु! उसके देशका शत्रु... वह जैसे रो पडेगी। क्षण भर पहले जो अशोकके सामने दृढ और स्थिर थी, वही अव प्रेमकी ऊष्माके कारण मोमकी भाति पिघल चली। वह कुमारसे प्रेम करती है। उसने महामात्यसे कहा था, 'कुमारके साथ वही व्यवहार होना चाहिए जो एक वीर पुरुषके साथ होता है।' ठीक है उसने महामात्यसे यह सब कहा था

परन्तु उसका अर्थ झुकना नही था। नही, उसने भइयाके सामने अपनी दुर्बलताको तनिक भी प्रकट नही होने दिया था।

इसी क्षण न जाने क्या हुआ? उसके अन्तरमे बैठा हुआ कोई अट्टहास कर उठा, "संघमित्रा! अपनेको इतना धोखा मत दो। निस्सदेह, तुमने अशोकसे सीधी दयाकी प्रार्थना नही की, परतु जब तुमने उनसे कहा था, 'सम्राट्, भूलिये नही, हृदयकी विशालताका नाम ही शौर्य है तब उसका आशय यही था कि कुमारको क्षमा कर दो।'

जैसे भूचाल आया हो, संघमित्राने बडी तीव्रतासे गरदनको झटका दिया। वह गिरते-गिरते बची, पर दूसरे ही क्षण उसने तीव्रतासे कहा, 'हाँ। मैं कुमारको बचाना चाहती हूँ। मै उससे प्रेम करती हूँ, मै उससे प्रेम करती हूँ। मै उसे बचाऊँगी। अवश्य बचाऊगी। भइया स्वय बडे दुखी है। कुमारके व्यवहारने उन्हे आलोडित कर दिया है। वे मुझसे पूछ रहे थे, 'क्या शस्त्रके अतिरिक्त किसीका वध करनेकी कोई और भी रीति होती है।' क्या इससे स्पष्ट नही है कि भइया स्वय कुमारको मारना नही चाहते। हाँ, वे उसे मारना नही चाहते। मैं इस दुर्बलतासे लाभ उठाऊँगी और कुमारको बचाऊँगी। कलिगकी रणभूमिमे उठते हुए चीत्कारने भइयाके वज्र-हृदयको हिला दिया है। मे अब उन्हे और न गिरने दूँगी। कलिगके नाशके ऊपर नये कलिगका निर्माण होगा। कलिग फिर जियेगा और उसके साथ जियेगा मेरा प्रिय कुमार ।'

संघमित्रा इस समय बडी तीव्रतासे आगे बढी जा रही थी। वह भूल गयी थी कि उसने सम्राट्से गायिका भेजनेकी बात कही थी। नही, नही, वह भूली नही। वह सब कुछ जानती है। वह अशोकको संगीत माधुरीमे डुबा देना नही चाहती। वह उसके भीतर पश्चात्तापकी आगको धधका देना चाहती है। वह जानती है कि पश्चात्ताप बढेगा तभी अशोक, कुमारको क्षमा कर सकेगा। प्राणदडकी आज्ञा पाकर कुमारने उनसे कहा था, "बस यही है तुम्हारी वीरता! यही है तुम्हारा शौर्य! इसी बूतेपर सम्राट्

बने हो। एक बन्दीका सिर नही झुका सके। खोपडियाँ ठुकरानेके लिए तो अनेक गीदड स्मशानमें घूमा करते है।' इस बातने अशोकको बहुत ही विचलित कर दिया है और फिर भिक्षु-श्रेष्ठ उपगुप्त भी सम्राट्के पास गये है। उसके महेन्द्र भइया भी आ पहुँचे है। क्या ये सब उन्हे मानवताके मार्गपर न ले आवेगे? नही, नही, वे अवश्य सफल होगे। हो सकता है कुछ देर हो जाय। इसीलिए वह कुमारके पास रहना चाहती है जिससे आवश्यकता पडे तो चडगिरीको कुछ देर रोक सके।

तब रात बहुत गहरी हो चुकी थी। छावनीमे गहन अंधकार छा रहा था। आकाशमे जो प्रकाश था उसने धरतीकी ओरसे नयन मूंद लिये थे। रहरहकर पहरुयेकी पुकार दूसरी पुकारोको दबा देती थी। राजकुमारीने इमी समय उस शिविरके गुप्त द्वारपर आहट की जिसमें कलिगकुमार बन्दी था। आहट पाकर चडगिरीने अन्दरसे पूछा, "कौन?"

"सघमित्रा।"

चडगिरी बाहर आकर बोला, "देवी इस समय?"

"हाँ, चडगिरी! राजकुमारसे कुछ बाते करनी है।"

"आवश्यक।"

"अति आवश्यक।"

"महाराजकी आज्ञ ।"

बात काटकर सघमित्राने कहा, "महाराज एकान्तमे है। मै अभी गायिकाको भेजकर आ रही हूँ।"

चडगिरीने क्षणभर सोचा फिर वह सघमित्राको अन्दर ले गया। भीतर जाकर सघमित्रा बोली, "बाहिर बैठो, चडगिरी! भिक्षु उपगुप्त आये तो उन्हे आने देना।"

"भिक्षु यहाँ आवेगे?"

"हाँ, चडगिरी। सम्राट् जो न कर सके उसे भिक्षु करना चाहते है।"

चडगिरी फिर क्षणभर सोचता रहा। बादमे बोला, "दड तो स्थिर है।"

"हॉ, जबतक सम्राट् उसे बदल न दे, तबतक वह स्थिर है।"

चडगिरीने अब कुछ नही कहा। वह बाहर जा बैठा। सघमित्रा प्रकोष्ठका द्वार खोलकर अदर पहुँची। वहॉ दीपकका मन्द प्रकाश मानो सिमटकर बैठा था। और कलिगकुमारकी छाया प्रकोष्ठकी एक भित्तिपर ऐसे पड रही थी जैसे किसी कुशल चित्रकारने विश्वासको चित्रित किया हो। आहट पाकर छाया हिली। कुमारने दृष्टि उठाकर देखा, देखता ही रहा। द्वारपर सघमित्रा निहारती ही रही। कई क्षण इसी अन्तर्द्वन्द्वमे बीते, मानो युग बीते। बादमे कुमारने दृढ पर मधुर स्वरमे कहा, "बन्दी कलिगकुमार देवी सघमित्राको प्रणाम करता है।"

सघमित्रा अब भी नही बोली, कॉपकर रह गई। कुमारने फिर कहा, "कोई आज्ञा है?"

सघमित्रा मौन ही रही।

कुमार कहते रहे, "भाई जो नही कर सका, वह क्या बहिन करने आई है।"

सघमित्राने अब दो पग धरे और बोली, "तो कुमार मुझे पहचानते है।"

कुमार हँसा, "देवि! कलिग-कुमारकी स्मृति इतनी मन्द नही है कि वह अपने शत्रुको भी न पहचान सके।"

"शत्रु"—सघमित्रा कॉप उठी।

"तुम्हे शका है? कलिग-भूमिको कलिग-पुत्रोके रक्तसे प्लावित करनेवाले अत्याचारी अशोककी बहन क्या मित्र हो सकती है?"

"हो सकती है।"—सघमित्राने एकदम स्वय अपनेको चकित करते हुए कह दिया।

राजकुमार पहली बार काँपा पर दूसरे ही क्षण सुस्थिर होकर बोला, "देवी पुरानी बाते याद कर रही है।"

"बात कभी पुरानी नही होती, कुमार! स्मृति उसे नया रखती है।"

"तुम शायद ठीक कहती हो परन्तु बात पुरानी न होनेपर भी उसका प्रभाव बदल जाता है।"

"नही कुमार, प्रभाव भी नही बदलता। वह केवल अपनेसे अधिक शक्तिशाली प्रभावके पीछे छिप जाता है।"

कुमार हँसा। बोला, "शब्दोका यह मायाजाल नारीको ही शोभा देता है।"

सघमित्रा और भी पास आ गई थी, बोली, "शब्दोका मायाजाल भावनाकी भित्ति पर उठता है कुमार! तुमने कुछ देर पहले भइयासे कहा था, 'बस यही है तुम्हारी वीरता, यही है तुम्हारा शौर्य, इसी बूते पर सम्राट् बने हो, एक बदीका सिर नही झुका सके। खोपडियाँ ठुकरानेके लिए तो अनेक गीदड श्मशानमे घूमा करते है।' इसके पीछे भी भावनाकी शक्ति थी।

"नही", कुमारने कहा, "उसके पीछे नग्न सत्य था।"

सघमित्रा अप्रतिभ नही हुई। बोली, "कुमार। अडा स्वय जीव नही होता, तो भी उसके अन्तरमे जीव समाया रहता है। नग्न सत्य और भावनाकी यही स्थिति होती है। भावना मनुष्यका वह बल है, जो उसे कभी क्लान्त नही होने देता।"

कुमार ऐसे हँसा जैसे कुछ छिपाना चाहता हो। बोला, "देखता हूँ देवी, सघमित्राने भी अपने भाईकी भाँति न हारनेका प्रण किया है।"

सघमित्राने शान्ततासे कहा, "मै प्रणमे विश्वास नही करती। मै उत्तर चाहती हूँ।"

कुमारने दृष्टि उठाई। कुछ कहते-कहते रुका। फिर सुस्थिर स्वरसे बोला, "उत्तर देना कोई कठिन काम नही है, देवि! कठिन काम है आश्वस्त

करना। और फिर तुम्हे यह न भूलना चाहिए कि वन्दीके जीवनकी घडियाँ गिनी हुई है।"

मघमित्राने सहसा धीरेसे कहा, "उन्ही घडियोकी सीमा तोडने तो आई हू।"

"तुम्हारा आशय ?"

'मै तुमसे तुम्हारे प्राणोका दान माँगती हूँ, कुमार।"

"मुझसे!"—कुमार अट्टहास कर उठा, "मुझसे! खूब, देवी तर्क करनेकी भाँति नाट्यकलामे भी प्रवीण जान पडती है। तभी अपने भाईके पास न जाकर मेरे पास आई है।"

मघमित्रा उसी प्रकार शान्त स्वरमे बोली, "भइयाके पास जाकर क्या करती ? वे प्राण ले सकते है, दे नही सकते। दे तुम ही सकते हो।"

'तो तुम कहना चाहती हो', कुमारने किञ्चित् तीव्रतासे कहा, "मै तुम्हारे भइयाके पास जाकर क्षमा माँगू। उनकी आधीनता स्वीकार करूँ।"

"नही, नही," सघमित्राने शीघ्रतासे कहा, "मै यह कभी नही कहती। मै यह कभी कह ही नही सकती।"

"तो क्या कहती हो।"

"मै कहती हूँ, सम्राट् यदि तुम्हारी मुक्तिका आदेश दे तो तुम उसे स्वीकार कर लेना।"

"मगधका क्रूर सम्राट् मेरी मुक्तिका आदेश देगा!"

"हो सकता है।"

"पर क्यो ? कैसे ?"

"क्यो और कैसे जाननेकी इतनी चिन्ता मत करो, कुमार! मनुष्य कब क्या कर बैठेगा, कौन जानता है। मगध सम्राट्की मानसिक स्थिति इस समय ऐसी है कि मेरे कहनेपर वे तुम्हे क्षमा कर सकते है।"

"तुम! तुम मेरी मुक्तिकी प्रार्थना करोगी ?"

"आज्ञा दो तो।"

"पर क्यो ?"

तब राजकुमारी काँप उठी। तभी दीपककी लौ भी काँपी। कुमारकी छाया भी हिली जैसे हल्कासा भूकम्प हुआ हो। एक क्षण बाद राजकुमारीने दृष्टि उठाकर कहा, "नही जानते ?"

"शायद !"

सघमित्रा क्या कहे ? मौन, आत्म-विभोर, खोई-खोई-सी वह खडी रह गई। फिर जैसे एक गहरा निश्वास उठा। वह जैसे अपने आपसे बोली, "ओह निष्ठुर कुमार, आखेटके बादकी वह रात भूल गये। भूल गये वे बातें !"

"कुमारी कुछ सोच रही है," कुमारने भी धीरेसे कहा।

सघमित्राने अब भी कोई उत्तर नही दिया। वह जैसे अपने अन्तरकी वाणी सुन रही थी। कोई कह रहा था—तुम कुमारसे प्रेम करती हो। महा-नाशके बीच भी तुम्हारी प्रणय-ज्वाला मन्द नही पडी। रक्त-प्लावनने भी तुम्हारी प्रणय-पिपासाको शान्त नही किया।"

वह जैसे तडप उठी। एक बार कुमारको देखा और फिर जैसे दृढ स्वरमे अपने मनको ही सुनाने लगी, "प्रणय यदि प्रणय है तो उसे संसारकी कोई भी शक्ति विमुख नही कर सकती। नारी जिसे एक बार प्यार करती है उसके हाथो अपना रक्त उलीचा जानेपर भी उसे प्यार करती रहती है, पर वह प्यार होना चाहिए, प्रणय होना चाहिए।"

यह सोचते-सोचते वह कुछ ऐसी स्थितिमे जा पहुँची, जहाँ व्यक्ति होता भी है और नही भी होता। वह अपने लिए नही थी पर कुमारके लिए उसका रूप जैसे प्रेमल ज्योतिकी तरह भासमान हो उठा। उसे लगा जैसे कुमारीके नेत्रोसे झरता हुआ एक परम शान्त, परम उज्वल प्रकाश उसकी ओर बहता आ रहा है और उसका स्पर्श जैसे उसके रोम-रोमको ऐसे सहला रहा है, जैसे क्लान्त वदनको कोई मधुर चापसे सहलाता है, जैसे भगवा के

झुलसे हुएको मलयानिलकी वायु दुलराती है। उस क्षण उसे लगा जैसे संघमित्रा वहाँ नही है। वह उसके नेत्रोसे होती हुई उसके अन्तरमे समा गई है। वह सहसा उच्छ्वसित स्वरमे चीख उठा, "कुमारी, तुम कहाँ हो ?"

इसके साथ ही कुमारी भी उसी कपित स्वरमे पुकार उठी, "कुमार !"

कुमार जागकर भी कई क्षण काँपता रहा। उसकी छाया हिलती रही। तब सघमित्राने मृदुल हँसी हँसकर कहा, "डर गये, कुमार !"

"हाँ कुमारी ! युद्धभूमिमे महाप्रलय देखकर भी जो नही डरा, पिताको भूलुण्ठित देखकर भी जिसने आह तक नही की, सम्राट् अशोककी भृकुटि भी जिसकी दृष्टिको नही झुका सकी, वही कुमार इस क्षण डर गया।"

सघमित्रा फिर हँस पडी, "कुमार वीर हैं। उन्हे कौन डरा सकता है ?"

कुमारने शीघ्रतासे उत्तर दिया, "दया !"

"दया" ! कुमारी सहसा काँपी।

"हाँ कुमारी, मुझे डर है कि कही तुम्हारी यह अवस्था मेरी प्राण-रक्षाका कारण न हो।"

"तो, तो तुम जानते हो। लेकिन, लेकिन मैं पूछती हूँ, ऐसा हुआ तो क्या यह बुरा होगा ?"

"मगध सम्राट्ने मेरा सिर काट डालनेकी आज्ञा दी है, कुमारी। मैं उस आज्ञाका सम्मान करूँगा। कुछ क्षण बाद जब मन-मोहिनी उषा जागरणका सगीत अलापती हुई आकाशसे उतरेगी तब उसीके साथ मेरी मृत्यु भी मेरा आलिगन करने आयेगी।"

उसी क्षण द्वारपर आहट हुई। चडगिरीने कहा, "देवी क्षमा करे, उन्हे बहुत देर हो चुकी है।"

सघमित्राने मानो याचना की, "थोडा और ठहरो, चडगिरी। बात पूरी नही हुई।"

"देवीकी जैसी आज्ञा।"

चडगिरीके पदचाप मिटते न मिटते कुमारने घृणासे कहा, "संघ-मित्रा, स्वार्थके लिए इतना झुकती है?"

"लक्ष्य प्राप्त करनेके लिए कुछ भी करना चातुर्य कहलाता है, कुमार।"

"पर मै ऐसे चातुर्यसे घृणा करता हूँ, देवि। मैं अपना मस्तक कभी नहीं झुका सकता कभी नही। मैं मर सकता हूँ पर किसीकी दयाका भिखारी नही बन सकता।"

संघमित्राने आह भरकर कहा, "कुमार! तभी तो मैं तुम्हे प्रेम करती हूँ।"

ये शब्द इतने उच्छ्वसित स्वरमे कहे गये थे कि कुमार क्षण भरके लिए उसे देखता ही रह गया और फिर बोला तो उसके स्वरमे तीव्रता नही थी। उसने इतना ही कहा, "कुमारी! मै बन्दी हूँ। मुझे प्रणय शोभा नही देता।"

"कुमार! मै तुम्हे मुक्त करा सकती हूँ, अभी इसी क्षण।"

"नही कुमारी, नही, मैं मगध सम्राट्की दया नही चाहता।"

"दया नही, कुमार! वह पश्चात्ताप होगा। सम्राट् तुम्हारे आनेके बादसे पश्चात्तापकी आगमे जल रहे है। मैंने चडगिरीसे इसीलिए समय मागा है। तुम्हारी मुक्तिका सदेश आनेवाला है। भिक्षु उपगुप्त सम्राट्के पास गये है।"

"भिक्षु उपगुप्त सम्राट्के पास गये है?"

"हॉ, कुमार! पर वे तुम्हारे प्राणोका दान मॉगने नही गये है। वे केवल तुमसे बाते करनेकी आज्ञा मॉगने गये हैं। हॉ! मै चाहती तो तभी ऑचल फैलाकर सम्राट्से तुम्हे मॉग लेती पर,पर ।"

"पर?"

"पर मैं तुम्हे अपमानित करना नही चाहती थी।"

"मै तुम्हारा आशय नही समझा, देवि।"

"आशय स्पष्ट है, कुमार! तुम्हारी भाँति मैं भी समझती थी कि तुम पर

मेरा दया करना तुम्हारा अपमान होगा। मैंने सम्राट्से तुम्हारे लिए एक शब्द भी नही कहा, पर दूसरी ओर उनके भीतर पश्चात्तापकी आग धधकानेमे भी कुछ नही उठा रखा। मै भिक्षु उपगुप्तकी आज्ञा ।"

"क्या ? क्या तुम भिक्षु उपगुप्तसे मिली थी ?"

"वे मेरे होनेवाले गुरु है।"

"राजकुमारी ?"

"ठीक है कुमार।"

"तो तुम यहाँतक पहुँच गई। मेरे बचानेके लिए तुमने इतना कुछ कर डाला।"

"तुम्हे नही, कुमार! अपनेको बचानेके लिए, अपने स्वार्थके लिए।"

"ठीक कहती हो, देवि! यह स्वार्थ ही है। सब कुछ स्वार्थ है। इस स्वार्थसे कोई भी अछूता नही है। मै भी नही हूँ। मेरा देश-प्रेम, मेरी वीरता, सब स्वार्थ है। परन्तु देवि! मेरा स्वार्थ अभी पूरा नही हुआ है। सम्राट्का पश्चात्ताप भी अभी तलपर है। उसे अन्तरकी गहराईमे जानेके लिए अभी और चोटकी आवश्यकता है। विनाशके सपूर्ण हुए बिना निर्माण असभव है।"

"क्या अभी और विनाश होना शेष है ?"

'बहुत शेष है, देवि!"

"क्या कहते हो ?"

"ठीक कहता हूँ। अभी मेरा वध शेष है। अभी तुम्हारा हृदय टूटना शेष है। अभी अशोकको अपने पश्चात्तापसे उत्पन्न दी गई आज्ञाका उल्लघन देखना शेष है।"

पागलसी सघमित्रा बोली, "क्या कहते हो ?"

तभी चडगिरीने आकर कहा, "देवि! सम्राट्की आज्ञा-पालनकी बेला आ पहुँची है।

कुमार उस ओर कान दिये बिना बोलता रहा, "मै ठीक कहता हूँ,-

देवि सघमित्रा ! मैं तुम्हे प्रेम करता हूँ, अपने जीवनसे बढकर प्रेम करता हूँ। तुमसे भी अधिक अपने देशको प्रेम करता हूँ। उससे भी अधिक मैं मनुष्यको प्रेम करता हूँ। पर मनुष्य तो आज सोया हुआ है। उसे जगानेके लिए अभी और बलिदानकी जरूरत है। कलिग-कुमार प्रणयसे नही डरता, नारीसे नही डरता, सघमित्रा ! यदि तुमने मुझे प्रेम किया है, तो समझ लो तुम्हारा प्रियतम कलिगके रक्त-यज्ञमे अपने रक्तकी पूर्णाहुति देकर उसे सपूर्ण करना चाहता है। यदि तुम मुझे प्रेम करती हो, तो मैं तुम्हे निमन्त्रण देता हूँ, तुम भी इस यज्ञमे आहुति दो। अपने प्रणयका बलिदान करो। कलिग-नारियोके रोदनमे अपना रोदन मिला दो जिससे धरती, अबर कॉप उठे महानाश पूर्ण हो जाये और महानिशाके बाद ऊषाका उदय हो।"

तब जैसे बिजली कौंधी। कुमार तडपकर उठा और उसने विमूढसे खडे चण्डगिरीकी कटार निकाल ली। और इससे पूर्व कि कुमारी झपटे उसे अपने वक्षःस्थलमे भोककर धरतीपर गिर पडा। बोला, "अब, अब, सघमित्रा। जितना चाहे प्यार कर लो। मैं जीत गया। तुम्हारे प्रियतमको हत्यारेके हाथ नही छू सके।"

हतभागिनीसी सघमित्रा दौडकर कुमारकी छातीके पास गिर पडी, चीत्कार तो क्या मुखसे अस्फुट स्वरतक न निकल सका। क्षण आये, क्षण गये, उसने जैसे अब कटारको देखा तो गिडगिडाई, "चडगिरी, चडगिरी !

विमूढ-से चडगिरीने कटार बाहिर खीच ली। रक्त बहकर सघमित्राके ऊपर आया पर उसे देखनेको चडगिरी रुका नही, बाहिर भागा। यह सब पलक मारते ही हो गया। उसको बाहिर जाता देखकर सघमित्रा जागी। तडपकर बोली, "चडगिरी ! कटार मुझे दो। यह कटार मुझे दो !"

उसी समय शिथिल होते हुए कुमारने उसका ऑचल पकडकर कहा, "प्रणय वेलामे छोडे जाती हो। मेरे सामने बैठो कि तुम्हे देखते देखते जाऊँ और जन्म जन्म तुम्हे पाऊँ। प्रणय कभी कायर नही होता और बलिदानसे नयी मानवता जागती है, सघमित्रा ! तुम्हे जीना होगा।"

आगे शब्द शिथिल होने लगे। सघमित्राने अब उठनेकी चेष्टा नहीं की। उसने कुमारके सिरको अपनी गोदीमे रख लिया और अपलक मन्द पडते उन तेजस्वी नेत्रोको देखने लगी। तभी द्वारपर फिर आहट हुई। शीघ्रतासे भिक्षु उपगुप्तके साथ कुमार महेन्द्रने भीतर प्रवेश किया। महेन्द्र बाहिरसे ही बोल रहे थे, "सघमित्रा, सम्राट्ने कुमारको क्षमा कर दिया। कुमार अब स्वतन्त्र है। उनका देश स्वतन्त्र है।"

बोल चुके तो नीचे देखा। नेत्रोके आगेकी धरती डोल उठी, "क्या! क्या, चडगिरी दो क्षण भी नही रुक सका?"

वही बैठे-बैठे सघमित्रा बोली, "चडगिरीको कुछ नही करना पडा। सम्राट्की दयाकी बात सुननेसे पूर्व ही कुमारने प्राणोका अन्त कर डाला।"

"तो कुमारने आत्महत्या की," विमूढसे महेन्द्रने कहा।

"नही", भिक्षुने सुस्थिर स्वरमे कहा, "कुमारने इस रक्त-यज्ञमे पूर्णाहुति दी है। उसने मेरा मार्ग प्रशस्त कर दिया। अब मनुष्यता जागेगी, अवश्य जागेगी।"

सभवत यही शब्द सुननेके लिए कुमारके नेत्र अभीतक खुले थे। भिक्षुके बोलते बोलते वे मुँद गये।

२०५१]

धरोहर

केवल कुछ महीने पुरानी बात है पर जैसे सदियाँ बीत गयी हो, जैसे असंख्य वर्षोंकी सीमा पारकर वह बात बहुत धीमा, अति धीमा स्वर लिये कानमे गुनगुना गयी हो, "अरी पगली! कितनी बार कहा, मत चिल्लाया कर इन बच्चोपर। मत झिडका कर इन्हे हर वक्त। कौन जाने बडे होकर ये क्या हो? देशबन्धु, गान्धी, रामकृष्ण, विवेकानन्द ये सब इस धरतीपर माँका पेट चीरकर ही तो निकले थे। कौन जाने उन्हीकी तरह हमारे बच्चे भी ?"

तब वह चूल्हेपर रखे भातको करछीसे हिलाकर देख रही थी और आँगनमे तीन वर्षकी लावण्य दुधमुहे चितरजनको पटककर, 'भूख लगी है' ऐसा कहकर रोने लगी थी। बालक गला फाडकर चीख उठा था। मृणालके तनबदनमे आग लग गई। क्रुद्ध, पसीनेमें तर, चिल्ला उठी, "राक्षसोने जान खा डाली! मौत भी तो नही आती इन्हे। कुएसे पेटमें सब सम जाता है, कभी आग नही बुझती। मुझे क्यो नही खा डालते, ना बाबा! ऐसी भी राक्षसी भूख क्या? अभागे, भाग्य भी ऐसा लेकर आये है कि देशमे अन्नका दाना तक नही मिल रहा है।"

कि तभी बाहिरसे आ गये नलिन बाबू। बगलमे छाता था, हाथोमे तरकारी और दो आम। कोलाहल देखकर क्रोध नही आया बल्कि मुस्कराकर लावण्यको गोदमे उठा लिया, चितरजनको पुचकारा, "अरे, अरे, इतना भी रोते है क्या? अभी चुप हो जाओ, देखो! क्या लाया हूँ?, आम खाओगे? हाँ, हाँ! तुम ही खाओगे! अच्छा, लावण्य! छूरी तो ले आना जरा।"

लावण्यका रोना तो बाबूके हाथमे आम देखकर ही रुक गया था, पर

बालक चितरजन था कि रोये जा रहा था। उसे उठाकर दोनो हाथोके झूलेमे झुलाना शुरू किया और साथ ही साथ गुनगुनाने लगे, "सो जा, सो जा, राजदुलारे!" और फिर पत्नीके पास आकर कहा, "सुनती हो, बच्चेका पालना बडा कठिन है। तभी तो इतना बडा, करोडो नर-नारियोका देश गुलाम पडा है। बचपनमे ही सबकी आत्मा कुचल दी जाती है। कोई समझता ही नही। तुम्हे कितनी बार समझाया पर व्यर्थ!" मृणाल बैठी थी, खडी हो गयी, तबतक झुँझलाहट उसकी दूर हो चुकी थी और वह लज्जित-सी बोली, "कोशिश तो करती हूँ पर कैसे करूँ? कभी-कभी जी दुखी हो उठता है।"

"हाँ, हाँ, नलिनने कहा और हँसे, "सो तो जानता हूँ मृणाल! पर सोचो तो एक दिन, बहुत दिन बाद, हमारा चितरजन बगालका दूसरा देशबन्धु हो तो कितना अच्छा हो?"

मृणाल मुस्करायी और बोली, "बहुत बडे घरमे जन्म लिया था उन्होने। इनके ऐसे भाग कहाँ?"

"बडे-छोटे घरसे क्या होता है पगली!" नलिनने कहा, "होता है शिक्षा और लालन-पालनसे। प्यारसे समझाना एक बात है। लात घूँसे या लकडीका चैला उठाकर मार देना दूसरी बात है।"

मृणाल इस बार खिलखिला पडी। चितरजनको गोदमे ले लिया। मुँह चूमकर और छाती उसके मुँहमे देती हुई बोली, "नही, नही, मै कभी नही मारूँगी इन्हे। धमकाऊँगी भी नही।"

और आज उसी घर मे बैठी-बैठी मृणाल उन बातोको सोचती है और सुबक सुबककर, हिडकी बाँधकर रोती है। रोनेका कारण है। बीते कलकी सन्ध्याने उसके जीवनकी दिशा एकदम पलट दी। उसे आस्मानसे जमीनपर ला पटका। नलिन जो महाकाल और महायुद्धकी विपताका मारा एक माहसे ज्वरमे पडा था, सदाके लिए उन्हे छोडकर चला गया।

"सुनती हो", उसने मरते-मरते कहा था, "मै जा रहा हू। मै इस

महाकालमे अपनेको बचा न सका, पर मै कहता हू तुम अपनेको बचाना। अपने लिए नही अपने बच्चोके लिए।"

अब मृणाल, भोली मृणाल मुबक सुबककर रोयी, बोल न निकला। केवल हाथ छातीपर रख दिया। धीमे धीमे, अटक अटककर नलिन फिर बोला, "रोती है ? ठीक है, रोनेका अवसर तो है, पर समझ ले हमारे ऊपर एक जिम्मेदारी है। उसे तो निभाना ही है। देशके दो बच्चे हमे पालने है। यह लडाई, यह महामारी अब खतम होनेको है। बगालकी स्वर्ण-भूमि अब फिर सोना उगलेगी। मेरी बदकिस्मती कि मै यह सब न देख सकूगा पर तू देखेगी। इसलिए रो मत ! सबर कर, अपने शरीरको देख, उसे छीजने मत देना। नही तो, नही तो चितरंजन भूखा ही ..।"

कि आगे उससे बोला नही गया। गला रुँधने लगा। सिर एक ओरको लुढक गया। आँखे खुलीकी खुली रह गयी। उसने हिचकी ली, अन्तिम हिचकी ! मृणालने देखा तो एकदम चीत्कार कर उठी, "हाय स्वामी ! तुम कहाँ चले ? बोलो तो ! मै अब क्या करूँगी हाय !" लेकिन उससे रोया भी नही गया। बेहोश होकर एक ओर लुढकने ही वाली थी कि उसका चीत्कार सुनकर पडोसकी एक लडकी वहाँ आ गई ? "भाभी, भाभी ! क्या हुआ री ?"

उसने देखा चीत्कार एकदम बन्द है। नलिन खाटपर लुढ़का पडा है, मृणाल जमीनपर। लडकी एकदम घबरा गई, "भइया ! छोटे भइया ! भाभी, भाभी ! क्या हुआ जी ?"

लेकिन कोई नही बोला। दौडी दौडी बाहिर गयी। जरासी देरमे पाँच-सात नर-नारी आये। सिर हिला-हिलाकर उन्होने कहा, "नलिनके प्राण मुक्त हो गये ! जीर्ण ककालमे कोई चेतना नही है।"

"और भाभी ?"

"मूर्छा है।"

और वे सब काठके ठूँठकी तरह निश्चल खडे-खडे एक-दूसरेका मुँह

ताकने लगे कि दोनो बच्चोको थामे एक प्रौढाने वहाँ प्रवेश किया। तब अधेरा बढा आ रहा था। उसने जो यह दृश्य देखा तो घबरा गयी "मृणाल, बहू।"

"मूर्छित है।"

"नलिन?"

"बोल रे! नलिनको क्या हुआ। नलिन, छोटे भइया!"

"भूख उसे खा गयी, दीदी।"

प्रौढाकी हठात् चीख निकल गयी। पीछे दीवाल न होती, तो शायद वह धरतीपर ढह पडती। उसके हाथमे तीन पुडियाँ थी, वे फर्शपर बिखर गयी। लावण्य माँके पास आकर रोने लगा। बालक भी गोदमे 'माँ' 'माँ' करके मचल गया कि युवतीके उपचार और बच्चोके स्वरसे जागरित होकर मृणाल उठ बैठी। आँखे फाड फाडकर उसने सबको देखा। फिर सहसा बाँध टूट गया, "दीदी, दीदी, बताओ तो कहाँ गये तुम्हारे छोटे भइया? कैसे होगा अब? मै कहाँ जाऊँगी? यह महाकाल, यह महायुद्ध, क्या ये कभी समाप्त नही होगे क्या?"

लेकिन उसके प्रश्नोका जवाब कौन देता और क्या देता। सभी तो एक गहरे अवसाद—एक गहरी भूखसे भरे पडे थे। उनकी सूरत मानवताका उपहास करती थी, पर कुछ थे जिनकी ममभपर भूखकी दीमक नही लगी थी। वे ही बोले, "यह चीत्कार अब बन्द करो! कौन सुनेगा! उठो और शरीरकी मुक्तिका प्रबन्ध करो।"

नलिनकी आत्मा मुक्त हुई और शरीर भी मुक्त हो गया। घरमे जो भी कपडा मिल सका उसीमे लपेटकर आग लगा दी गयी और जरासी देरमे कुछ हड्डियोको छोडकर सब शून्यमें विलीन हो गया लेकिन उसकी याद, उसकी बाते, उसका काम, इन सबको शून्य भी न लील सका। मृणालका कंकाल जिन्दा है। उसका दिल टुकडे-टुकडे हुआ जाता है। पर प्राण चिपके है। हतभागिनी लावण्य माँड पी-पीकर जिये जा रही है। छातीका माँस

लोग घर-वार छोडकर भागे जा रहे है, पर सब क्या वहाँ पहुँचते होगे। ककाल भी अच्छे होते हैं । देखकर डर लगता है जैसे दीमक खा गई हो। हाय न जाने किस जन्मके पाप उदय हुए है इस देशमे।"

मृणालने कहा, "दीदी। पापकी कौन जाने! पर यह भूख भी क्या परमात्माने भेजी है। आदमी आदमीको खाता है पर दीदी ।"

कहती कहती हिचक गई। दीदीने देखा। ककालसे उसकी हालत अच्छी नही है, पर न जाने कोन आशा प्राण अटकाये है। वोली, "कहती कहती रुक क्यो गयी?"

"कहती थी मै भी शहर चली जाऊं। चितरजनको देखो सूखता जा रहा है। वडी आशा थी इसपर उनकी, इसे तो जिलाना ही होगा।"

दीदीने उसे फिर देखा, "तू चली जायगी अकेली?"

मृणाल बोली, "क्यो न जाऊँगी दीदी! सभी तो जा रहे है। लावण्यको तुम रख लेना। कुछ दिन-वाद लौट आऊँगी।"

"लेकिन मृणाल! शहर क्या पास है। सव तो पहुँच भी नही पाते। रास्तेमे कहते है कि लाशोके ढेर लगे हैं और फिर तू स्त्री है, अकेली है।"

मृणाल एक जीर्ण हँसी हँसी, जिसने उसके रूखे मुखको और भी दयनीय वना दिया। वोली, "स्त्री हूँ तो क्या? अब मुझमे है ही क्या जो कोई माँगेगा। इसीके लिए दो कौर मुहमे दे लेती हू। तुम्हारे छोटे भइया कहते रहे—तू न खायेगी तो चितरजनको क्या दूध मिलेगा? कितनी वेवस होती है स्त्रियाँ दीदी! अपने लिए वे कुछ भी नही कर सकती। खायेगी सतानके लिए, पहनेगी स्वामीके लिए। इसीलिए चितरजनके लिए शहर जाऊँगी। वह जियेगा, देशका भला होगा, उनकी आत्मा प्रसन्न होगी।"

और कहते कहते मृणाल इतनी प्रसन्नतासे उमडी कि दीदी अचरजसे उसे देखती ही रह गई। मना करनेका साहस नही रहा और मना करती भी किस वूतेपर। गाँवमे अन्नका दाना भी नही था। वोली, "तो तू जायेगी। अच्छा। पर एक वात है, सँभलकर जाना। शहरका नाम वुरा है। न

"चलो !"

मृणालने चितरजनको जोरसे दबा लिया। उसका हृदय फटने लगा।

"चलती नही ?"

"नही।"

"नही ?"

"नही, नही अभागे पुरुष, नही। पापी पेटकी ज्वालामे झुलसती हुई नारीसे तुम उसकी इज्जत भी मॉग लेना चाहते हो। सब कुछ तो तुमने ले लिया अब क्या इतना भी रखनेका अधिकार तुम्हे खलता है।"

भद्र पुरुषमे लज्जा कहॉ थी, वीभत्स हँसी हँसकर कहा, "जान पडता है अभी नई आई हो। पगली, इसीके सहारे आज सैकडो घरोका खर्च चलता है। जीनेके लिए ऐसा करना पाप नही है !"

"आग क्यो नही लग जाती ऐसे जीनेको। कलकको माथेपर सजाकर कोई ऑखे कैसे खुली रखता है। मुझे नही चाहिए तुम्हारा भात, तुम्हारा दूध। मै हाथ जोडती हूँ तुम मुझे छोड दो।"

कहती कहती मृणाल रो उठी। भद्र पुरुष फिर हँसे। भवे चढाकर हाथोको शून्यमे हिलाया। फिर शैतानी मुस्कराहटसे बोले, "आती लक्ष्मी-को ठुकरानेका जो परिणाम होता है वह मै समझता हूँ, तुम जानती हो, पर अगर कभी आवश्यकता हो तो मै क्रुद्ध नही होऊँगा। मै सदा तुम्हारी सहायता करनेको तैयार हूँ।"

और वे चले गये। मृणालके प्राण लौटे मानो आज भरपेट भोजन मिला। उसने एकदम निश्चय किया कि वह अब अपने घर लौट जावेगी, जरूर लौट जावेगी, किसी भी शर्तपर, एक भी क्षण वह शहरमे नही रहेगी। हाय रे ! मानवके रूपमे कैसे शैतान यहॉ बसते है ? खून चूस चूसकर लाल हुए ये दानव अब हमारा एकमात्र सबल भी फुसलाकर छीन लेना चाहते है। इसीलिए तो भूख इन्होने गॉव गाँव फैला रखी है, इसीलिए तो ये मछली पकडनेके काँटेकी तरह आशाकी डोर हिलाते रहते है। हाय रे भाग्य !

क्या सच भगवान् है, क्या सच ऊपरकी दुनिया है ? नही, नही, यह सब इसी शैतानकी माया है, नही तो क्या श्मशानमे भी मानवको प्रणयकी सूझती है ?"

मृणालके भीतरका दबा विद्रोह जाग उठा। नारीकी समस्त कोमलता जलकर कोयला बन चली। बस उसमे चिनगारी लगनेकी देर है कि वह जल उठेगी और ध्वस कर देगी सब विघ्नजाल। लेकिन, लेकिन गोदमे चितरजन है। चितरजन ! हाँ, वह देशकी धरोहर है, स्वामीकी स्मृति है। लेकिन नही ! देश इस योग्य नही है कि वह जिये, महान् बने। कहाँ है देशके वे बडे आदमी ? वे देवता ? स्वामी जिनकी चर्चा करते कभी नही थकते थे। जिनके सुन्दर सुन्दर चित्र उन्होने कमरेमे सजाये है। उन्हे दिखाकर वे कहते, 'देख मृणाल ! ये है स्वामी विवेकानन्द। अपनी बग भूमिके लाल ! कैसे तेजस्वी है ? अमेरिकामे इन्होने ही हिन्दू धर्मका नाम गुजाया था। इन्होने मानव मानवके बीचकी खाईको पाटने-का अनथक प्रयत्न किया था। ये रामकृष्ण है इनके गुरु, निर्माता ! ये कवि ठाकुर है, देशके मुकुट मणि। ये नेहरू है, ये चितरजन है, ये गान्धी।' न जाने उसे क्या क्या याद आने लगा, "हाय कहाँ है ये महामानव, क्यो नही ये देशको बचाते। गान्धी और नेहरू तो अब भी हमारे बीच है। वे क्यो नही अपना सिर ऊँचा करते। वे क्यो नही यहाँ आकर देखते कि मानव मानवके रक्त माँसको खाकर ही सन्तुष्ट नही है, वह उसकी आत्मापर भी कलक लगाना चाहता है।"

उसने बहुत कुछ सोचा। उसके स्वामीने जो कुछ समझाया था, सुझाया था वह अब इस बेबस, शिकजेमे फँसी तडफडाती नारीको रहरहकर याद आने लगा। याद ही नही, उसमे तेज फूटने लगा, वह तेज जो मृत्युको चुनौती देता है पर चुनौतीके सामने तो चितरजन है, जो सब विद्रोहको, तेजको लील जाता है। वह रो पडती है, हाय स्वामी। स्वर्गमे, नरकमे जहाँ भी तुम हो देख रहे हो। मुझे बताओ मै क्या करूँ ? तुम मुझे मरने

नही देते, दुनिया जीने नही देती। तुम कहते हो यह देशका धन है पर देश तो अपने धनको पैरोसे रौद रहा है। उसे तो सोना प्रिय है। लेकिन इसे तो बचाना ही होगा! कैसे? कैसे बचाना होगा? गाँवमे सर्वभक्षी मौत फली है। इसे छोडेगी नही और वह फूट-फूटकर रोने लगी। पर रोते रोते जैसे उसे कुछ सुझाई पडा। सागरकी अथाह तरंगोमें थपेडे खाते खाते, जैसे उसने उडते पक्षीको देखा। उसने जोरसे बच्चेको छातीसे भर लिया और फिर चूमते-चूमते पागल होने लगी, "हाय मेरे लाल! तू इतना सुन्दर क्यो है? तू इतना प्यारा क्यो है?" और इसी प्रकार विचारोके आल-जालमे फसी वह भूखोके बीचमे जाकर पड रही। इन आर्तनादोके बीच प्रकृतिका नियम उसी तरह चलता रहा। वही अँधेरा, वही चाँदनी, वही गर्मी, वही वर्षा। वही चिडियोकी चहचहाहट, कुत्तोकी भो भो। आस्मानका नीलापन, सूर्यका उत्थान और पतन। मृणाल जहाँ सोई थी, वहाँ भी रातके बाद दिन उगा। चहल-पहल जागी, आवागमन शुरू हुआ। अनगिनत भूखोका रोना चारो तरफ व्याप्त हो गया। जो मरणासन्न थे वे आर्त्तनाद कर उठे, जो मुक्त हुए उनकी आत्माएँ आसमानमें मंडराने लगी लेकिन बीभत्सतासे दूर एक ऊँचे मकानके पीछे कुछ विशेष चहल पहल मची। देखते-देखते एक छोटी-सी भीड इकट्ठी हो गई।

"क्या है रे, क्या है यहाँ,"—एक स्वर उठा।

"बच्चा।"

'बच्चा, किसका बच्चा?"

'बाबा, एक बच्चा है, अकेला पडा है धरतीपर।"

"कौन डाल गया देखा किसीको?"

"नही।"

"ओ, कितना सुन्दर है पर कितना दुर्बल।'

"अरे रे! रोता है"—वृद्ध पुरुष आगे बढ आये, "ढूढो रे। किसका है?'

किसीने कहा, "किसी भूखेका होगा।"

"ना, ना", बाबा बोले, "भिखारी क्या खाकर ऐसा बच्चा पाएगा।"

"सोनेकी प्रतिमा है।"

कि भीडको चीरते एक भद्र पुरुष आये। वे ऊँचे मकानके स्वामी थे। उनके साथ दो नारियाँ थी—एक युवती, दूसरी प्रौढा-सी।"

प्रौढाने आगे बढकर कहा, "कहाँ है रे वह बच्चा, देखूँ।"

युवती देखकर बोली, "दइया रे, कैसा रोता है यह?"

"किसका है?"—प्रौढा कातरसी बोली।

युवतीने उसे गोदमे चिपका लिया। शिशुको न जाने क्या मिला कि वह एकदम चुप हो गया और मुँह फाड-फाडकर छातीमे मारने लगा। युवती करुणार्द्र होकर बोली, "भूखा है, दीदी। माँका दूध माँगता है।"

"तो ले चल, घर ले चल, शोभा"—प्रौढा बोली और मुडकर पुरुषसे कहा, "ढूढो जी किसका बच्चा है? माँ होगी तो कलेजा फटता होगा। गोदी खाली होनेपर भी मेरा जी बैठा जाता है।"

लेकिन वे भीडको चीरकर निकले निकले कि कोलाहल मच गया, "देखो, देखो, वह कौन है?"

"कौन है? कौन है जी? वह स्त्री! पगली लगती है वह तो!"

कि वह पगली दौडी-दौड़ी वही आई। वह मृणाल थी। सूखे बिखरे बाल, फीका मुख, सजल नयन, दयार्द्र वाणी, "अरे ठहरो, बच्चा मेरा है, मै माँ हूँ, मै उसकी माँ हूँ।" कहते-कहते उसने बच्चेको युवतीकी गोदसे झपट लिया और छातीमे इस तरह दबोचा जैसे उसे कोई छीन ले जा रहा हो और फिर तीरकी तरह उसी ओर, जिधरसे आयी थी चली गयी।

अचकचाकर प्रौढा बोली, "बच्चा इसीका है, पर यह है कौन?"

युवतीकी आँखे भर आई थी, वह बोल नही सकी, केवल देखती रही।

भीड़ कौतूहलसे चर्चा करती फटने लगी कि प्रौढा फिर भद्र पुरुषको सबोधित कर बोली, "अजी, इसका पता तो लगाना यह है कौन ?"

भद्र पुरुषने धीरेसे कहा, "किस किसका पता लगाएगी, सरोजिनी ! आज वगभूमिका रोम-रोम पीडित है, मानवता नष्ट हो चुकी है, प्रलयकी भूमिका बँध रही है। कौन बचेगा, और किसको बचाएगा ? आओ चलो पर इसे देखूँगा।"

भीड़के लोग चले गये थे। ये तीनों भी आश्चर्य और करुणासे दबे-दबे घरकी ओर लौटे कि युवती चौक पडी, "वह फिर आ रही है।"

प्रौढा मुडी, "आ रही है ?"

"हॉ, दीदी ! देखो। वह फिर आ रही है।"

और सच ही मृणाल फिर पागलोकी तरह लौट आयी। आते ही उसने बच्चेको प्रौढाके सामने धरतीपर लिटा दिया। बोली, "मेरी भूल थी। मै इसे पाल न सकूगी। इसे तुम ही पाल सकती हो, यह तुम्हारा बच्चा है। देशका बच्चा है।"

और इतना कहकर वह पागलोकी तरह लडखडाती हुई, मकान, सडक, बगीचा सबको चीरती हुई दूर, भिखारियोके बडे झुण्डमे अन्तर्धान हो गयी। यह सब इतनी तीव्रतासे, इतने रहस्यमय वातावरणमे हुआ कि वे तीनो हक्के-बक्के रह गये। बालक जब रोया तभी उनकी नीद खुली। प्रौढाने लपककर उसे गोदमे चिपका लिया और बोली, "शोभना ! मै सच कहती हूँ, यह बच्चा उसका नही है। कभी नही है।"

१९४५]

गृहस्थी

वीणा जब बाहरसे लौटी तो सदाकी तरह झुँझलाहटसे भरी हुई थी। उसके पीछे दोनो बच्चे ऐसे दौड रहे थे मानो इजनके साथ ट्रेनके डिब्बे घिसट रहे हो। वह शीघ्रतासे ऊपर चढ गई। आगे बढनेसे पूर्व उसने जीनेके पासवाले कमरेमे झाककर देखा, हेमेन्द्र तख्तपर लेटा हुआ एक पुस्तक पढनेमे व्यस्त था। उसे देखकर वह कुछ बडबडाई और आगे बढ गई, लेकिन बच्चे नही बढे। वे भडभडाते हुए कमरेके अन्दर दाखिल हो गये। अतुलने सीधे, तख्तके ऊपर, हेमेन्द्रके पास जाकर कहा, "पिताजी! डाक्टरने कहा है, अम्माकी अँगुली कटेगी।"

हेमेन्दने मुँह उठाकर अतुलको देखा और फिर धीरेसे कहा, "नीचे उतरो।"

"अम्माकी अँगुली कटेगी।"

मै कहता हूँ नीचे उतरो। जाओ! जाओ भाई, उतर जाओ।"

अब अतुलने मुँह चढा लिया। रुँआसा-सा होकर बोला, "हम कहते हैं, अम्माकी अँगुली कटेगी।"

"ओफ्फो! भाई रोते क्यो हो? कहाँ है अम्मा?"

सुजाता उर्फ ताताने आगे बढकर कहा, "मामाजी! मामीके हाथमे फुसी निकली है न? डाक्टरने उसे काटनेको कहा है।"

"ओहो! यह बात थी। जाओ, जाओ, मुझे पढने दो। बाहर खेलो जाकर।"

सुजाता बाहर जानेको मुडी, पर अतुल महाशय खिडकीपर चढ गये और बोले, "मै यहाँ बैठकर पढूँगा। ताता तू भी आ।"

वह अपना वाक्य पूरा कर भी न पाया था कि ताता कूदकर उसके पास

जा बैठी और दोनों एक-एक किताब उठाकर परीक्षार्थी विद्यार्थियोंकी भाँति पढ़नेका प्रयत्न करने लगे। हेमेन्द्रने एक बार उन्हें देखा, फिर मुस्कराकर अपनी पुस्तककी ओर मुड़ गया। कुछ क्षण बीते होंगे कि एक हाथमें दूधका गिलास लिये वीणाने वहाँ प्रवेश किया। उसे पासकी तिपाईपर रखकर वह बोली, "अतुल, ताता! जाओ, मैं दूध रख आई हूँ। जाकर, पिओ।"

दूधका नाम सुनकर दोनों बाहर दौड़ गये। तब वीणाने बेरुखीसे कहा, "घरमें आटा नहीं है।"

"ऐं।"

"घरमें आटा नहीं है।"

स्वरमें आवश्यकतासे अधिक तलखी थी। यद्यपि वह तलखी उसके लिए नई नहीं थी, तो भी उसे उठना पड़ा। उसने धीरेसे गिलास उठाया, फिर पूछा, "तुमने पिया?"

वीणा और भी भुनभुना उठी, "मैं कहती हूँ घरमें आटा नहीं है।"

"नहीं है तो अन्नपूर्णा जाने।

वीणाने तीव्रतासे कहा, "अन्नपूर्णा गई भट्टीमें। मुझे आटा चाहिए।"

हेमेन्द्रपर तनिक भी असर नहीं हुआ। बोला, "वीणाका स्वर इतना कर्कश नहीं होना चाहिए।"

वीणा अब उबल पड़ी। जो कुछ भीतर भरा हुआ था वह वर्षाके नालेके वेगके समान बाहर निकलने लगा, "मैं कहती हूँ अपनी काहिली और निकम्मेपनको बातोंके पीछे क्यों छिपाते हो? कुछ करते क्यों नहीं? ऐसे ही जीवन बिताना था, तो शादी क्यों की थी? क्यों दुनियामें रहनेकी हविस करते हो, कहीं जंगलमें जा बसे होते! कान खोलकर सुन लो मैं अब इस तरह तुम्हारा घर नहीं चला सकती।"

हेमेन्द्रने मानो कुछ हुआ ही नहीं, ऐसे कहा, "मेरा घर! किसने कहा कि घर मेरा है? घर तो घरवालीका होता है।"

"मै अब इन बातोमे आनेवाली नही हूँ। अगर रोटी खानी है, तो उठकर बाजार जाओ और गेहूँ लेकर आओ।"

"आ जाएगे।" हेमेन्द्रने उसी शान्तिसे कहा और दूध पीकर पूर्वत लेट गया।

पर वीणा शान्त होनेवाली नही थी। हेमेन्द्रको लेटते देखकर और भी क्रुद्ध हो उठी। बोली, "इस तरह काम नही चलेगा। मुझे आज फैसला करना है।"

"किस बातका ?"

"कि आपको काम करना है या नही ? आप कभी कुछ सोचते भी है ?"

शीघ्रतासे बीचमे टोककर हेमेन्द्रने कहा, "यही तो मुसीबत है। इतना सोचता हूँ कि फुरसत नही मिलती।"

"खाक सोचते हो। कुछ सोचते होते तो ये दिन क्यो देखने पडते ? तुम तो एकदम निकम्मे हो गये हो। तुमसे इतना भी नही हो सकता कि घरको दियासलाई ही दिखा दो। फुक जाएगा, तो न रहेगा बॉस न बजेगी बॉसुरी।"

"ठीक कहती हो वीणा, काश कि मै दियासलाई जला पाता! जला सकता, तो प्रकाश न हो जाता ? अब तो मै निरे अन्धकारमे टटोल रहा हूँ।"

वीणा तिलमिला उठी। उससे वहॉ खडा नही रहा गया। बडबडाती हुई अन्दर चली गई और हाथके गिलासको बडी तेजीसे जूठे बर्तनोमे फेंक दिया। जोरका शब्द करता हुआ वह दूर जा पडा। फिर उठाया ओर दुगुनी तेजीसे यथास्थान रख दिया। उसके सामने ढेर सारा काम करनेको पडा था। उसे बरतन मॉजने थे, दाल बीननी थी फिर कहीसे आटा लाकर रोटी बनानी थी। क्योकि उनके कोई एक मित्र आनेवाले थे। 'जी मे आता है जिस किसीको खानेको कह देते है, पर यह नही सोचते कि खाना आएगा कहाँसे ? कोई बात है, मुझे दर-दर भटकना पडता है। और ये हैं कि आरामसे लेटे लेटे जमीन आस्मानके कुलाबे मिलाते रहते है। दोस्तोके

साथ ऐसे कहकहे लगाते है कि आसमान फटने लगता है ।' कि उसी समय उनकी दृष्टि रसोईके अन्दर गई। अतुल और सुजाता दोनो अपने-अपने आसनोपर बैठे थे। अतुलके सामने दूध बिखरा पडा था और वह सुजाताके गिलाससे दूध पी रहा था। वीणा चिल्ला उठी, "अतुल!"

अतुलने काँपकर गिलास मुँहसे हटाया।

"तू सुजाताका दूध क्यो पी रहा है?"

अतुल जोरसे बोला, "उसीने दिया है।"

सुजाताने धीरेसे कहा, "मुझसे पिया नही गया, मामी!"

वीणा नरम पडी, पूछा, "किसका दूध बिखरा है?"

अतुलने कहा, "हम तो आ रहे थे, गिलासमे पैर लग गया।"

वीणा एक बार फिर काँपी, पर दूसरे ही क्षण चिल्लाकर कहा, "पैर लग गया! क्यो लग गया? देखकर नही चला जाता? बडी नदी बह रही है न दूधकी। कलको यह भी नही मिलेगा। इन लक्षणो दूध क्या पानीकी बूदको तरसोगे। तुमने जन्म ही ऐसे घर मे लिया है। पिछले जन्ममे जरूर पाप किये होगे।"

वीणा कहाँ-से-कहाँ पहुँच गई। आँसू भर आये। वाणी रुध गई। उठी, पतीलीमे जो दूध था उसे चुपचाप दोनोके गिलासमे उडेल दिया। दोनो बच्चे सप्रश्न देखते ही रह गये? वीणाने कहा, "देख क्या रहे हो? जल्दीसे पीकर गिलास मुझे दो।"

दोनो बच्चे यन्त्रवत् दूध पीने लगे। वीणाने कहा, "सुजाता! दूध पीकर शीला भाभीके पास जाना।"

सुजाताने एक साँसमे दूध पीकर कहा, "जाऊँ।"

"हाँ।"

"क्या कहूँ?"

"कहना दो सेर आटा चाहिए।"

"अच्छा।"—कहकर सुजाता धनुषसे निकले तीरकी तरह भागी।

अतुलने पीछा करना चाहा पर माँकी आँखे देखकर झिझक गया। कुछ देर वही खडा रहा, फिर बैठकमे पहुँचा। हेमेन्द्रके पास कोई मित्र आ बैठा था। गहरी बाते हो रही थी। वह कुछ क्षण इधर-उधर मडराया। फिर कोई किताब गिरा दी, तो हेमेन्द्रने कहा, "बाहर जाकर खेलो भाई।"

फिर अन्दर लौटा। वीणा बरतन माँज रही थी। कई क्षण देखता रहा, फिर बोला, "अम्माँ।"

"हाँ।"

"तुम उठ जाओ।"

"क्यो? बरतन कौन माँजेगा?"

"हम माँजेगे। तुम्हारे हाथमे चोट लग रही है।"

वीणाने ऊपरसे नीचेतक सिहरकर अतुलको देखा, मुस्कराई, बोली, "जा, जा, बाहर खेल। बरतन माँजेगा! बापने निहाल कर रखा है जो बेटा करेगा।"

अतुल कुछ खिसिया गया पर वह कुछ कहे कि बाहरसे आवाज आई, "अरे भई, पानी भेजना!"

वीणाने यन्त्रवत् गिलास धोया और अतुलको देकर स्नेहसे कहा, "जा बेटा, अपने पिताजीको पानी दे आ।"

अतुल शीघ्रतासे पानी लेकर चला था कि ताताने आकर कहा, "मामी, उन्होने आटा नही दिया।"

"क्या कहा?"

"कह रही थी, तीसरे दिन आटा माँगने आ जाती है। कहाँसे दे।"

यह सुनना था कि वीणा तडप उठी, "क्या कहा, तीसरे दिन आ जाती है? कौन मरा जाता है तीसरे दिन? और कभी, लाती हूँ तो क्या कभी रखा है? तूने कहा नही?"

सुजाता मामीका रुद्र रूप देखकर पहले ही घबरा गई थी, अब और भी मिटपिटाई। बोली नही। वीणा तेज हो उठी, "हाय, जैसे घरमे थे वैसे

सोवेमें आ गये। बिल्कुल अपने निकम्मे मामापर गई है। अरे तुझमें मुँह फाड़कर नहीं कहा गया कि मामी बता तो कोनसा आटा रख लिया है तेरा? ले जाती हूँ तो दूसरे दिन दे भी तो जाती हूँ।

सुजाता अब भी भयभीत दीवारसे चिपकी खड़ी रही, पर वीणाका क्रोध शान्त नहीं हो रहा था। उसने बरतनोंको छोड़ जल्दी-जल्दी हाथ धोते हुए चिल्लाकर कहा, "अब खड़ी क्या है? बरतनोंको धो ले।"

और कहकर तड़पती-तड़पती पहुँची शीला भाभीके घर। भरी हुई तो थी ही, चिल्लाने लगी, 'मैं कहती हू भाभी! तुझे ताना मारते शर्म नही आई? आटा नही था तो मना कर देती, पर बड़े बोल क्यों बोलती है? बता तो किस दिन तेरा आटा नहीं लौटा और कौनसी चीज रह गई बता?"

शीलाको यही आशा थी वह पूरी तरह तैयार थी। बोली, "देख वीणा! यहाँ तड़कने-भड़कनेकी जरूरत नहीं है। आटेको मैंने मना नही किया है। मैं तो कह रही थी, हेमेन्द्रका यह निकम्मापन अच्छा नहीं। सबके घर मिट्टीके चूल्हे हैं। आजकल किसके घर सोना बरसता है? सब मेहनत करते हैं। उसे चाहिए हाथ-पैर हिलाए।"

वीणाने तड़पकर बीचहीमें टोकते हुए कहा, "बस, बस, शीला भाभी! रहने दे। उनतक न जा। उन्हे तू खिला रही है क्या? तेरा इतना साहस कि तू उन्हें निकम्मा कहे? तेरे तो उनके पैर धोने लायक भी नही है। दुनिया पूजती है उन्हें। दूसरे दर-दर मारे फिरते है, तो कोई नहीं पूछता और यहा घर बैठे पूजने आते हैं। कोई दिन जाता होगा जो चार-चारका खाना न बनाती हू। बनाती हूं तो मैं, मुसीबत है तो मेरी, तुझे क्या दर्द उठा जो लगी उनका अपमान करने? दो पैसे हो गये है तो लाडोंका दिमाग फिर गया है। ब्लैक मार्केटकी कमाईके यही फल होते हैं, अभिमान फूटता है। यहा तो तन खपाना पड़ता है तब दो टुकड़े नसीब होते है। पर कोई रुला दे, किसीका रखा है, किसीसे भीख मांगी है?"

नारीके अभिमानपर चोट लगती है तो तेज जाग उठता है। परन्तु वह तेज एक सीमापर पहुँचकर पिघलने लगता है। वीणाका क्रोध पानी बन चला, आहत अभिमान आँखोकी राह बह निकला। बोली, "तुझे मै अपना समझती थी तब तेरे पास आ जाती थी। नही तो और घर बहुत है। घर-गिरस्तीमे लेना-देना चलता ही रहता है।"

और इतना कहकर वह भरे गलेसे लौट चली। शीला बहुत-कुछ कहनेको तैयार बैठी थी, पर आँसू देखकर उसकी सिट्टी गुम हो गई। वह खिसिया गई और निकाला हुआ आटा वही पडा रह गया।

लेकिन कुछ देर बाद कही औरसे आटा लेकर वीणा जब घर पहुँची तो देखती क्या है कि शीलाका लडका आटा लिये नीचे खडा है।

वीणाने अभिमान भरे स्वरमे कहा, "मुझे आटा नही चाहिए। कह देना मुझे उसका कुछ नही चाहिए।"

और झपटकर वह ऊपर चढ गई। कमरेके पास आकर सुना कि अन्दर कई व्यक्ति जोर-जोरसे बोलकर अपनी महत्ताको प्रकट कर रहे है, पर उसके पतिका स्वर सदाकी तरह शान्त और धीमा है। उसे लगा उस शान्तिमे गहनता है। धुआँधार वर्षाका पानी धरतीको धो जाता है, पर उसकी प्यास नही बुझा पाता। वह काम तो भरे हुए बादलोकी धीमी-धीमी बूदे ही कर सकती है।

एक बन्धु बडी तीव्रतासे बोल रहे थे, "चारो ओर भ्रष्टाचार फैला हुआ है। आचरण समाप्त हो चुका है। कुछ साम्राज्यवादी स्वार्थी लोग अपना उल्लू सीधा करनेके लिए दुनियाको गुमराह कर रहे है। ऐसी स्थितिमे आपके पास क्या है जो इस बढते हुए अत्याचारका विरोध कर सके?"

हेमेन्द्रने शान्त स्वरमे जवाब दिया, "मेरी दृष्टिमे तो आवश्यकता अकिचन बननेकी है।"

मित्र ठगेसे रह गये! कई क्षण सन्नाटा रहा, फिर एकने कहा, "क्या?"

दूसरे जोरसे हँसे, "वाहियात! ढोग।"

तीसरे बोले, "आपका मतलब क्या है?"

हेमेन्द्रने उसी शान्तिसे जवाब दिया, 'मतलब साफ़ है। आवश्यकता इस बातकी नही है कि हम यह पता लगायें, किसमे कितने दोष है, बल्कि इस बातकी है कि हम अपने दोषोको स्वीकार करे।"

एक कहकहा लगा। एक मित्रने कहा "वही खोखला आदर्शवाद।"

दूसरे तलखीसे बोले "आप तो बस सदा साधु बननेकी बात कहते है पर उसके लिए तपोवनकी ज़रूरत है, दुनियाकी नही।"

हेमेन्द्रने कहा, "तपोवन दुनियासे बाहर नही है, देखे तो तपोवनोने अक्सर सफलतापूर्वक शासन किया है।"

मित्र भी अप्रतिभ न होनेकी प्रतिज्ञा करके आये थे, और भी विद्रूपसे बोले, "आप जिस त्यागकी ओर सकेत कर रहे है, वह क्रातिके बिना असभव है।"

हेमेन्द्रने जवाब दिया, "क्रातिकी आवश्यकता हो सकती है, पर उसका शोर एकदम अनावश्यक है। मै तो कहता हू मेरे भाई! सब कुछ बदल दो पर जबतक अपनेको अकिचन समझकर काम करनेकी शक्ति नही पा सकोगे तबतक कुछ नही होगा। आज नही, कल झगडा होगा। अपना महत्त्व बढा तो दूसरोका घटेगा। दूसरोका महत्त्व घटा तो शान्ति सद्भावना और सुख सब हवा हुए।'

किसीने कुछ जवाब नही दिया। हेमेन्द्रने क्षणभर रुककर फिर कहा, "सो भाई, मूल बात तो अकिचन बननेकी है शेष जो जनतन्त्र, अधिनायकतत्र, समाजवाद, गाँधीवाद या विषाक्त गैस, एटम बम, हाइड्रोजन बमकी बात है, वह सब ऊपरी है। भोजन उन्हे जडसे मिलता है। जडमे अकिचन है, तो ये सब मनुष्यके दास है। नही तो तुम जानते हो, आज ये सब मनुष्यकी छाती पर चढ बैठे है और मनुष्य है कि अपनेको उनका स्वामी समझकर उन्हे दूसरोको नष्ट करनेका आदेश दे रहा है।"

मित्र जैसे अब बेसबरे हो चले थे। सहसा एकने तीव्रतासे कहा, 'आप

तो आत्महत्या करनेकी बात कहते है। क्या नष्ट हो जानेमे ही कल्याण है ?"

उसी तरह धीमे स्वरमे हेमेन्द्रने कहा, "आपकी बात मान ली पर मैं पूछता हूँ, हम नष्ट हो गये तो दुनियाका क्या विगड जाएगा ? और बिगड भी जाए, कोई इस रास्ते आकर देखे तो सही। लोग तो पहले ही काल्पनिक भयके मारे जान दिये डाल रहे है, मेरे भाई! भय ही मनुष्यका एक मात्र दुश्मन है और आजकी यह सारी शक्ति इसी भयकी नीवपर खडी हुई है।"

अन्दर फिर सन्नाटा गहरा उठा। लगा इस बातका किसीके पास कोई जवाब नही है। वीणाका मन एक मधुर आह्लादसे भर उठा पर उसे तो रोटी बनानी है। याद आते ही वह जैसे स्वर्गसे गिरी और आगे बढ गई। जल्दीसे चूल्हेमे आग चेतन की। कौन जाने इन्हींमे कोई खानेवाला हो और वह अभी कहला भेजे ? कोई भरोसा थोडा ही है उनका। उसके हाथ काम कर रहे थे और मस्तिष्क सोच रहा था कि कुछ देर बाद अतुलने आकर कहा, "अम्मा! पिताजी कहते है, खाना पॉच आदमियोंके लिए बनाना।"

वीणा जैसे कुछ समझी नही, "क्या कहता है ?"

"पिताजी कहते है, पॉच आदमी खाना खाएगे।"

जेसे एकदम ज्वालामुखी फट गया हो। चिल्लाकर वीणा बोली, "कहदे जाकर यहॉ होटल नही खुला है और न कोई सदाव्रत लगा है। क्या समझ लिया है मुझे ? कह दिया पॉच आदमी खाना खाएगे। जैसे घरमे कामधेनु बधी हुई है। वाह जी वाह! कुछ करना न धरना! दिनभर तख्तपर पडे हुए हुक्म चलाये जाते है। करना पडे तो पता लगे। भला कोई बात है ? पॉचको क्या मैं अपना सिर खिलाऊँगी। जरा बुलाकर तो ला।"

अतुल बच्चा था पर जान पडता है ऐसी बातोका आदी था। बोला, "अम्मा! वहॉ तो बहुतसे आदमी बैठे है।"

"तू जायगा भी या यही खडा-खडा जबान चलाएगा ? आखिर है

तो उसी बापका बेटा न ! जा, मै कुछ नही कर सकती। कुछ नही करूँगी। जो होगा देखा जायगा। एक दिनकी हो तो भुगती जाय, यह तो रोज-रोजकी दाँताकिलकिल है। आज इसका फैसला होकर रहेगा। मैं अब इस घरमे नही रह सकती। मै इस घरमे नही रहूँगी।"

वीणा बोलती जाती थी और जल्दी-जल्दी आटा मलती जाती थी। चूल्हेकी लकडी बाहर निकल आई थी, उसे तेजीसे अन्दर डाल दिया। दालका मैल उफन रहा था उसे उतारा और सागके ऊपर का पानी बदला और एक बार फिर जोरसे कहा, "मै देखूगी आज क्या होता है? आज फैसला नही किया तो मुझे भी वीणा कौन कहे? मुझे क्या कोई कमी है? न जाने किस जन्मके पापसे ऐसे निकम्मेके पल्ले बध गई हूँ? पर मैं क्या अपाहिज हूँ? दस काम कर सकती हूँ। पढा सकती हूँ।"

फिर उसी तेजीसे अतुलसे कहा, केवल कहना चाहा, कह न सकी क्योकि तभी सामनेसे मदन आ गया। बोला, "भाभी नमस्ते।"

किसी तरह सभलकर वीणाने उत्तर दिया, "नमस्ते।"

"ओ हो! भोजन बन रहा है। बैठकमे बडी भीड है। आज भी दावत है क्या? कोई खास प्रबन्ध तो दिखाई देता नही?"

मदन इस घरका पुराना परिचित है। अक्सर आता रहता है। हेमेन्द्रसे अधिक वीणासे उसकी पटती है। पहले तो वीणा उससे बचती थी क्योंकि उसकी वाणीमे सयम कम था, पर जब मदनने भइयाके विरोधमे भाभीका पक्ष लिया तो वीणा उससे नाराज न रह सकी। बादमे तो वह कई बार उसके आगे रो-रो पडी। आज भी फफक उठी, "भीड लगी है तो खाएँगे ही। हुक्म आया है, पाँच आदमियोका खाना तैयार करो, अब बताओ मै कहाँ जाऊँ? क्या करूँ? इन्होने तो मेरा जीना कठिन कर दिया।'

"पाँच आदमी खाना खाएँगे?"

हाँ।"

"पहले नही कहा था?"

"पहले तो एकका कहा था।"

"हाय राम!" मदनने नेत्र विस्फारित करते हुए कहा, "यह अत्याचार है! ना बाबा! कोई बात है? किसी भली औरतको इस प्रकार सताना। भाभी! सच कहता हूँ तुम हो, नही तो इस घरमे कोई टिक सकता है? घरमे दाना नही, लानेकी हिम्मत नही, दिल इतना बडा कि दावत देगे शहर भरको। हूँ।"

"क्या बताऊ, तू ही देख ले।"

"भाभी! इसका तो कुछ न कुछ प्रबन्ध करना ही होगा। मै बताता हूँ, आज तुम खाना मत बनाओ। देखते है, क्या होता है। आखिर एक दिन इसका फैसला तो होना ही है।"

"होना तो है।"

"तो बस, आज होने दो। सबसे अच्छा तो यह है कि तुम गायब हो जाओ।"

न जाने क्यो वीणाने यह सुनकर एकदम मदनको देखा। तब बलिष्ठ शरीर और लाल सेबसे मुखवाला वह मदन मुस्करा रहा था और उसकी आँखोसे मद-सा झर रहा था। वीणा काँप उठी। कई बार काँपी, फिर सस्मित-सी उठकर अन्दर चली गई। लगा वह गिर पडेगी। उसने दीवार पकड ली। कई क्षण उसपर सिर टिकाये रही, फिर आप-ही-आप आगे बढी जैसे वीणा नही थी कोई यन्त्र था। अलमारी खोली। उसमे एक सन्दूकची रखी थी। उसीके नीचेके खानेमे एक रूमाल था जिसमें कुछ रुपये बँधे थे। उनमेसे वीणाने तीन रुपये लिये और बाहर आई। जैसे युग बीत गये थे। बिलकुल बदल गई थी। बोली, "मदन!"

मदन स्वय चकित था कहा, "भाभी!"

"ले भइया! ज़रा बाज़ार तो जाना। पास ही चाटवालेकी दुकान है। एक रुपयेकी चाट अतुलको ले दे और सुजाताको भी ले जा। दूध मिलेगा, गरम या ठडा, कैसा भी हो। सामकके चावल पडे है, वे ही बना दूगी और हाँ,

एक दर्जन पक्के केले भी लिवा देना। न हो तो दे जाना। तुम्हे तकलीफ तो होगी।"

मदन था भी और नही भी। वह सुननेका नाटक कर रहा था और देख रहा था वीणाके मुखको। कुछ पल्ले नही पडा पर दूसरीवार पूछने और मना करनेका साहस भी उसमे नही था। उलटे पैरो दौडा, "अभी लाता हूँ।"

नीचे उतरकर होश आया। पहले तो मन-ही-मन वीणाको एक मोटीसी गाली दी। फिर लाना क्या है यह याद करने लगा, पर यादने सरासर धोखा दिया। सौभाग्यसे अतुल और सुजाता साथ थे और उन्हे सब कुछ याद था इसलिए कोई दिक्कत नही हुई। बाजारसे सामान आया और वीणाने सबके लिए खाना बनाया। मित्र लोग खाते जाते थे और प्रशसाके पुल बाँधते जाते थे। स्वय हेमेन्द्रको उस दिनकी विविधतापर अचरज हुआ।

सब खा चुके तो वीणाने दोनो बच्चोको अच्छी तरह खिलाया-पिलाया, पर अपने लिए उसने कुछ भी बचाकर नही रखा। अतुल और सुजाताके सामने जब उसने अतिम रोटी और रही-सही खीर परसी तो दोनो ने एक-दूसरेको देखा। वीणा भभक उठी, "बुत बने क्यो बैठे हो? खाते क्यो नही? पहले ही बहुत मिलता है जो लिये बैठे हो। कबतक तुम्हारे लिए रुकी रहूँगी? अभी चौका उठाना है, बरतन माँजने है। जल्दी खाओ और खबरदार जो कुछ छोडा। राशनका ज़माना है।"

दोनो बालक बोलनेमे असमर्थ जल्दी-जल्दी खाने लगे। खा चुके तो बैठकमे पहुँचे। अतिथि लोग चले गये थे और हेमेन्द्र किसी समाचारपत्रके पन्ने उलट रहा था। उसने एक बार दृष्टि उठाकर दोनो बच्चोको देखा और पूछा, "खा लिया भाई?"

दोनोने एकसाथ गरदन हिलाकर स्वीकृति दी। हेमेन्द्रने फिर पूछा, "अच्छा लगा न?"

अतुल एकदम बोला, "पिताजी, अम्माने खाया ही नही।"

ताताने शीघ्रतासे समर्थन किया, "हाँ, मामाजी ! मामीके लिए कुछ नही बचा।"

"कुछ नही !"

"हाँ !"

"क्यो ?"

"पता नही।"

तीनोने एक-दूसरेको देखा। जानकर नही, अनजाने ही दृष्टि मिल गई। हेमेन्द्र एकबार तो उठाकर कोई पुस्तक पढने लगा, पर कुछ देर बाद न जाने क्या हुआ ? पुस्तक बन्द करके अगडाई ली और एक दृष्टि कमरेपर डाली। वही एक मेज, एक कुरसी, दो आराम कुर्सियाँ, एक डैस्क, एक तख्त और चटाईका फर्श और आलोमे कुछ किताबे। दीवारपर दो-तीन पारिवारिक चित्र—सब कुछ देखकर वह बाहर आया। देखा—वीणा रसोईके बाहर बरतन मल रही है। उसका आँचल गोदीमे पडा है। बाल कुछ बिखरेसे है। मुखपर गहरी वेदनाके चिह्न है। कुछ अच्छा नही लगा। पास आकर पुकारा "वीणा ?"

वीणाने आँख झुका ली, "हाँ।"

"सुनो तो।"

"कहो भी।" स्वरमे कर्कशता थी।

"तुमने कुछ नही खाया ?"

अबवीणाने गरदन उठाई। उसी कर्कश स्वरमे कहा, "तुम्हे क्या मतलब ?"

"मतलब तो कुछ नही पर पूछता था।"

वीणा उबल उठी, "मतलब नही तो क्यो पूछते हो ? बडे पूछनेवाले बने हो, जैसे कोई समझे बडा ध्यान रखते है घरका ! कान खोलकर सुन लो, मै जा रही हूँ।"

हेमेन्द्रको लगा उसने यहाँ आकर गलती की, पर अब तो तीर कमानसे छूट चुका था। मुस्कराकर बोला, "तुम तो वीणा, व्यर्थ ही इतनी तेज होती

हो। अरे भाई! वे आ गये तो क्या मै मना कर देता! मत्र अपने अपने भाग्यका खाते है। दाने-दानेपर मोहर है। बेचारे तुम्हारी तारीफ करते नही अघाते थे।"

वीणाका मुह तमतमा रहा था। तीव्रतासे कहा, "मुझे नही चाहिए किसीकी तारीफ। उसे आप बॉधकर अपने सिरपर लीजिए। मुझे क्यो तग करते हो? मै तो जा रही हूँ।"

हेमेन्द्र हँसा, "तुम्हारे विना मुझे तारीफ मिलनेवाली नही है।"

हँसी क्रोधरूपी अग्निका घृत है। वीणाकी क्रोधाग्नि भभक उठी, बोली, "मैने कह दिया, मुझे कोई मतलव नही। क्यो मुझे ज़लाने आये हो? मै अव नही रहूँगी, नही रहूगी, मेरा तुम्हारा निभाव नही हो सकता।"

"कहाँ जाओगी?"

"कही भी जाऊँ।"

"पर मै जानूं तो सही।"

"तुम्हे क्या पडी है। तुम चले जाओ। नही तो मै अभी कूद पडूंगी।"

"कूद पडोगी मो कूद पडो! तुम तो हमेशा ही ऐसी धमकियाँ देती रहती हो।"

"क्या कहा? मै धमकी देती हूं। अच्छी वात है। देख लेना इस क्षणके वाद इस घरका एक वूंद पानी भी पिऊँ तो वीणा न कहना।"

हेमेन्द्रने अव वहाँसे हट जानेमे ही कल्याण समझा। चुपचाप अपने तख्तपर जा बैठा। वीणा उसी आवेशमे अन्दर जाकर अपनी चीज वटोरने लगी। वह रहरहकर अस्फुट स्वरमे वडवडा उठती थी, "आज मुझे चले ही जाना है। चाहे मुझे धर्मशाला मे जाकर रहना पडे पर अव इस घरमे नही रहूँगी। कोई वात है? मुझे न जाने क्या समझ लिया है? नौकरानी भी अच्छी होती।"

आँखोमे आँसू भर आये पर उन्हे पोछा नही। उसी तरह वडवडाती रही, "न जाने मैने क्या पाप किये थे जो इस नरकमे पडना पडा। हर वक्त

बात, हर वक्त बात, जब देखा तब बात! जैसे बाते ही धरतीको स्वर्ग बना देंगी। मिट्टीके माधो न कामके न धामके। बस हुकूमत चलवा लो। भगवान्ने तनिक बुद्धि दे दी है। नही तो कोई पूछता भी नही। कोई कमी थी मुझे? ऐसे-ऐसे ।"

फिर सहसा मदनका ध्यान आगया—गठीला बदन, रक्तिम वर्ण, विशाल वक्षस्थल, आजानबाहु, मदिर नयन!

जैसे तूफानमे पत्ता काँप उठता है ऐसे ही हालत तब वीणाकी हुई। सब कुछ शून्य हो गया और फिर उस शून्यमे अतुलकी मूरत उभरने लगी। आँखोमे अश्रुका वेग बढ चला। सिहरकर फुसफुसाई, "अतुल मेरा है मेरे साथ रहेगा। ताता अपने घर जाएगी।"

बहुत देरतक इस तरह सोच-सोचकर वह बाहर निकली। उसका मुख डूबते सूरजकी लाली जैसा लग रहा था। आँखे वीरबहूटी बन रही थी और शरीर जैसे झुलस गया था। वह सीधी बैठकमे पहुँचने ही वाली थी कि कानोमे कुछ शब्द पडे। ठिठक गई स्वर नारीका था। वह कह रही थी, "ऐसी हालतमे क्या मुझे उसके पास रहना चाहिए?"

जवाब हेमेन्द्रने दिया। वही शान्त और गभीर स्वर, "यह तो आपके निश्चय करनेकी बात है। मेरा इससे कोई सबध नही है।"

मैंने तो निश्चय कर लिया है, मैं अब उसके साथ नही रहूँगी। मै कल ही आपके पास आ जाऊँगी।"

"मेरे पास? आपका मतलब मेरे घर?"

"मै घर-वर कुछ नही जानती। मै आपको जानती हूँ।"

"पर मैं तो कुछ नही हूँ, जो कुछ है घर है।"

"कुछ भी हो।"

"कुछ भी कैसे? उसमे अन्तर है। मै कुछ नही हूँ, घर है। और घरसे

मतलब है वीणा ! सो मेरे पास आओगी तो वीणासे कह दूँगा कि वह तुम्हारा प्रबन्ध कर दे। वीणाके बिना मैं कुछ नही हू।"

वीणाने सब कुछ समझा। उस औरतको पहचाना। वह अक्सर आया करती थी। सब कुछ समझ गई। जैसे एक बार फिर तूफान आया, भूकम्पने सब कुछ उलट-पलट दिया। वीणा जान बचाकर अन्दर भागी पर भूकम्पसे क्या कोई बचता है ? हतभागिनी-सी वह वही अपनी गठरियो, अपने दोनो बेखबर सोते हुए बच्चोके पास फर्शपर गिर पडी और फफक-फफककर रो उठी—"ओह ! मै इतनी कायर क्यो हुई ? ओह मै क्या करने जा रही थी ?"

१९५०]

दूसरा बर

उसके दिलमे आग लगी हुई थी, लेकिन उसे बुझानेवाला कोई नही था, सभी तेल छिडकनेवाले थे। मानो ज्यो-ज्यो आगमे शोले उठते, ज्यो-ज्यो वह तिलमिलाती, त्यो-त्यों उन सबका खून बढता और उनके दिल खिल उठते। वह रोती तो वे हँसते, वह अलस उदास होकर कही कोनेमें छिपना चाहती, तो वे चौकमे इकट्ठे होकर चुहल मनाने लगते। गर्ज कि वह दर्दको दबाना चाहती और वे दर्दको उभाडने लगते। दुनियामें एक रोता है, तो दूसरा हँसता है। गरीबीके कारण ही अमीरीका अस्तित्व है। दुखीको देखकर सुखी सुखकी साँस लेता है। वह आज अगर दुखी थी, तभी वे उसे देख हँसते थे। कहते थे——घर छोडकर बाहरवालोसे आँखे लडाती है। दो दिन शहरमे रहकर दिमाग सातवें आसमानपर चढ गया है। आजादी चाहती है कि शहरवालोकी तरह चाहे जिसके पीछे होले——इत्यादि, इत्यादि।

लेकिन ये सब रोजके ताने सुननेकी वह आदी हो गई थी। उसका दिल सदा भरा रहता था और वह रहरहकर अपने आपको कोसने लगती थी, यद्यपि इस आत्म-निन्दाके पीछे बदलेकी भावना थी। कमजोरी और बे-बसीके कारण जो आदमी दूसरोपर जुल्म नही कर सकता, वही अपने आपपर करता है। इसीको आत्म-प्रतारणा, आत्म-निन्दा और आत्म-हत्या कहते है। वह भी कभी-कभी आत्म-हत्याका विचार करने लगती थी——मुझे मौत क्यो नही आ जाती ? मै उन्हीके साथ क्यो न मर गयी ?

इसी तरह गाँवकी यह जवान विधवा जब कभी गोबर बटोरते-बटोरते थक जाती या छतपर उपले समेटते-समेटते कुछ याद आने लगता और दीवारके सहारे सिर लगाकर ऊपरको देखने लगती, तब उसके चोट

खाये हुए दिलसे विचार-धारा अबाध गतिसे बहने लगती। अतीतकी सारी कहानी नीले आसमानमे इस तरह चित्रित हो जाती, जिस तरह अन्धेरा होने-पर रातके तारे चमकने लगते है। उसे याद आ जाते वे दिन जब उसका मालिक, उसका सरताज इस जमीनपर मौजूद था। उसकी ओर देखकर इसका दिल बॉसो उछलने लगता था। उसकी ओर देखकर ही यह गर्वमे कदम उठाकर चला करती थी और उसीके कारण यह बहुत दिनतक शहरमे रह आई थी।

उन दिनोकी बात ही निराली थी। उसने आकर एक दिन कहा था, "सुना तूने, मै पास हो गया हूँ।"

"सच ?"

"हॉ।"

"अब क्या होगा ?"—बडी-बडी भोली ऑखोमे मादकता भरकर इसने पूछा था और जवाबमे दोनो बाहोमे भरकर इसके मालिकने कहा था, "अब शहर चलेगे।" छुडाते-छुडाते वह बोली थी, "चलो हटो, दिनमे भी कोई ऐसे करता है।" लेकिन कोई उसके दिलसे पूछता। वहॉ दिन-रातका अन्तर नही होता और फिर शहर जानेकी कल्पना खेत-खलिहानकी हिरनीके लिए जीवनकी सबसे मादक कल्पना है। वह विभोर हो उठी थी। उसका रोआँ रोआँ उद्रेकसे उछलने लगा था। कुछ देरके लिए उसने उपलोको परे धकेल दिया था, क्योकि उसे याद आने लगा था कि एक बार वह बचपनमे शहर गई थी। उसने वहाँ देखे थे, ऊचे-ऊचे पक्के मकान, पत्थरकी सडके, घोडागाडियॉ और और हॉ! वह पो-पो करनेवाली मोटरे और दो पहियेवाली साइकिल, जिसपर चढकर उसका पति शहर जाया करता था।

इसी तरह उसके दिमागमे पुरानी बाते धुधली स्मृतियाँ बनकर आयी और उसके दिलमे उमगोकी मादकता भरकर मिट चली। उसका चेहरा चमक उठा, छाती उभर आयी और चलते-चलते उसने अपने चारोओर ऐसे देखा मानो कहती हो—मुझसे बढकर आज सुखी कौन है, आज मैने

स्वर्ग पाया है। अरे! तुम सब आज मुझे देखो, मैं कितनी सौभाग्यवती हूँ? और उसका गर्व, उसकी कल्पना, सब सच्ची थी। सभीने उसके भाग्यको सराहा। सभीने अपनी-अपनी भाषामे उसे बधाई दी। सभीने आज उससे हार मान ली। घरकी बडी बूढियोने प्यारसे बाते की, मर्दोने बहूकी किस्मतको सराहा। हमजोलियोकी आँखोमे सरलता, मादकता, ईर्ष्या और हर्ष सभी उमडे। सभीने मानो उसके सामने सिर झुकाकर कहा, "तू आज रानी है! तू सदा रानी बनी रहे।"

और यही सोचती-सोचती वह युवती विधवा उमड आयी। आँखोका बाँध टूट गया। वह आँचलमे मुँह छिपाकर फफक-फफककर रो उठी। क्षण बीता कि वह बडे ज़ोरसे काँपी। किसीने कहा—अभागिन! अभीतक रोती है। सोनेका सुहाग ख़ाकमे मिला दिया। अब ख़ाकमे भी आग लगाना चाहती है।

लेकिन वहाँ कोई नही था। यह सब उसके दिमागकी खराबी थी और सच तो यह था कि उसे रोनेकी इजाजत नही थी। उसके मालिकको मरे दो साल बीत चले थे और उसकी जातिमे पतिकी मौतका शोक साल भरसे ज्यादा नही मनाया जाता। विधवाको दूसरा वर चुनना होता है। ठीक है, पुरुषके विना स्त्रीका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नही है। उसके नेत्रोकी मादकता, उसकी छातीका उफान इस वातकी याद दिलानेके लिए है कि उसे पुरुषकी जरूरत है। और उसे भी अपने मालिककी याद इतना नही सताती, अगर पहिली वरसौंधीके समय उसका मनचाहा दूसरा वर उसे चुनरी उढा जाता।

पूरे सालभर बाद जब उसके पतिके घरवाले शोक खत्म करनेके लिए इकट्ठे हुए, तो उनकी यही सलाह थी कि बहूको देवरके घर विठा देना चाहिए। यद्यपि वह अभी जवान नही था, फिर भी मर्दपर जवानी आते क्या देर लगती है? दो-चार माहमे खा-पीकर ठीक हो जायेगा और वह पहलेकी तरह वहूकी बहू वनी रहेगी। लेकिन वे सब अचरजसे काँप उठे

जब उसने अपने देवरसे विवाह करनेसे इन्कार कर दिया। उसने दृढतासे कहा, "मै इसके साथ विवाह नही कर सकती।"

स्तम्भित होकर उन्होने पूछा, "तो क्या जन्मभर विधवा रहना चाहती है?"

जवाब दिया, "नही।"

"तब क्या किसी औरके साथ रहना चाहती है?"

"हाँ।"

"कौन है वह?"—अचरजसे बडे-बूढे बोल उठे, "हम भी तो जाने।"

उसने बता दिया। वह उन्हीके कुटुम्बका एक लडका था। उसका यौवन उभर आया था। लम्बी-लम्बी मासल भुजाये पहले पतिकी याद दिला देती थी। रग सैवकी तरह सुर्ख़ और बदन भरा हुआ था। अभी पढ रहा था ओर पूरी आशा थी, वह थानेदार बनेगा। उसका नाम सुनकर जैसे पचायतमे सन्नाटा छा गया—विधवाका इतना साहस?

किसीने मुसकराकर व्यगसे कहा, "आखिर मन ही तो है।"

एक बूढा तुनककर बोला, "आग लगे ऐसे मनको।"

आग तो उसके मनमे लग ही रही थी। तभी इतना साहस पैदा हुआ था कि मुँह खोलकर कह सकी—मै उसके साथ विवाह करूँगी।

पहले विवाहकी बात और थी। वह तो विवाह नही, बल्कि विवाहका नाटक था। वह नही जानती थी, विवाह क्यो और क्या होता है? लेकिन वह आज जानती थी, स्त्री-पुरुष किसे कहते हैं? दिलमे तूफान क्यो उठता है? छातीमे उमगे उठ-उठकर क्यो गिर जाती है? आँखोमे नशा क्यो छा जाता है? और इतना ज़ाननेवाली स्त्रीसे कहा जाता है—तुम अपने देवरके साथ विवाह कर लो।

नही, नही—उसने सोचा था—मै इसके साथ कभी विवाह नही करूँगी। मेरे सामने ऐसा लगता है, जैसे गोदका खिलाया हुआ है। दुबले-पतले हाथ, ढीला-ढाला बदन, सूनी अलसाई आँखे, बात-बातमे रोनेकी

आदत—छि ! ऐसा लडका भी क्या मेरा मालिक, मेरा सरताज होने योग्य है ? यह मेरी उमडती हुई उमगोको कैसे शान्त कर सकेगा ? यह तो स्वय ही उनमे वह जायेगा।—यही सोचते-सोचते उसने निश्चय किया कि कुछ भी क्यो न हो, वह उसके साथ रहना स्वीकार नही करेगी। रही होनेवाले थानेदारकी बात। वह भी इसी कुटुम्बका था। अनेक वार उसके घर आया था। बहुत कुछ उसके पतिदेवसे मिलता था। उसे देखते ही दिलमें विश्वास पैदा होता था, छाती उभर आती थी और आँखे प्यासी-सी देखने लगती थी। इसीलिए उसने एकदम सोच लिया था—रहूँगी तो इसीके घर रहूँगी।

इसके अलावा होलीके दिनोमे आकर कई वार इसके साथ होली खेल गया था। कई वार इसके कोडेकी मारके नीचे भी वह उसके मुँहपर गुलाल मल गया था। शहरमे भी अनेक वार वह इसके घर आया था। एक दिन कहा था, "भाभी, आज तुम रानी बनी हो।"

"रानी ?"

"हाँ ! तुम अव भइयापर निष्कटक शासन करती हो ! और भइया वने है अफसर।"

"लेकिन तुझपर कहाँ करती हूँ", न जाने कैसे वह बोल उठी।

"मुझपर ?" वह हँसा था।

"हाँ ! तुझपर शासन करनेवाली वडी भाग्यवती होगी।"

'हूँ'—वह फिर हँसा था, "मै वनूगा थानेदार, मुझपर कौन शासन करेगा ?"

तव वह वडे जोरसे खिलखिला पडी थी, "देखूगी रे तेरी ताकत !"

और वह शायद उसी होनेवाले थानेदारकी ताकत देखना चाहती थी। शायद शासन करनेकी इच्छा फिर तीव्र हो उठी थी। कुछ भी हुआ हो, उसने यह साफ कह दिया—वह उसके सिवा किसीके घर नही वैठ सकती।

घरवालोने वार-वार कहा, "वहू, पगली न वन, घरकी रीति न तोड।

कुलका कान तोडनेवालेपर कुल-देवताका शाप पड़ता है। अरी! आजतक तुझे बेटी समझा, अब गैर न बन, और तू देख! मर्दका क्या दुबला, क्या पतला, अगली फसलतक बदन भर आयेगा। आखिर उसी पेटका तो है। तू अपनी जिन्दगीके साथ-साथ हमारी जिन्दगी भी बरबाद मत कर।"

लेकिन ये सारी खुशामदे, सारी धमकियाँ उसे अपने निश्चयसे रचमात्र भी न हटा सकी। उसने आँखे नही उठायी। ज़मीन कुरेदती रही। आँखोमे पानी भर-भर आया, लेकिन जबान नही पलटी। यही कहा—बैठूगी तो उसके घर, नही जन्मभर दुख भरूँगी। आखिर उन्हे हार माननी पडी। उन्होने कहा, "अच्छा बहू, तू खुश रह। हम उनसे बाते करेगे।"

लेकिन इससे पहले कि वे उस घरतक सदेशा पहुँचा सकते, यह बात सारे गाँवमे फैल गयी। बात वायुके साथ उडती है। होनेवाले थानेदारने भी ये बाते सुनी। सुनकर मुसकराया, "भाभीका इतना साहस?"

एक दोस्तने कहा, "हुकूमतकी चाट पड गई है।"

दूसरा बोला, "शहर रह आयी है।"

तीसरेने कहा, "लेकिन हर्ज क्या है? जवान है और गोद खाली है।"

चौथा बोला, "और फिर थानेदारकी दो स्त्रियाँ तो होनी ही चाहिए।"

लेकिन उसने कहा, "मै भाभीको अपने घर नही बिठा सकता। उसका देवर मौजूद है।"

दोस्त बोला, "अरे! देवर तो अभी बच्चा है।"

"जवान होते देर नही लगती। आखिर मर्द है।"

"यह ठीक है, परन्तु उसका दिल तुमपर टिकता है, तभी तो इतना साहस किया है।"

"कल तुमपर टिकने लगा तो!" कहते-कहते उसका स्वर व्यगसे कठोर हो उठा और उसने मुँह फेर लिया।

"तुम उसे पसन्द नही करते?" दूसरे मित्रने तर्क किया।

"नही!" उसने दृढतासे कहा।

शायद होनेवाले प्रलयकी निशानी है। कुछ भी हो, गाँवकी उस अभागिन विधवाके लिए वह तूफान भी मुक्तिका सन्देशा लेकर नही आया। वह उसी तरह जीती और पिसती रही। लेकिन इधर एक परिवर्तन उसे दिखाई देने लगा था। वह यह था कि इतना बोझ, कलक और अपमान सहकर भी उसमे जीनेकी इच्छा बलवती होती जा रही थी। केवल जीनेकी नही, बल्कि सुखसे जीनेकी। काम करते-करते जब वह थककर चूर-चूर हो जाती, जब उसका बदन कसकने लगता और जब उसकी आँखे सजल हो उठती, तब चुपचाप कई प्रश्न उसकी छातीके भीतर उभर आते। कई तस्वीरे आँखोके सामने नाचने लगती और सबसे बढकर अचरज तो उसे तब होता, जब इन सब प्रश्नो और तसवीरोके पीछे वह अपने उस देवरको देखती, जिसके साथ विवाह करनेसे वह एक दिन, सारे कुटुम्बकी इच्छाके विरुद्ध इन्कार कर चुकी थी। तब वह काँप-काँप उठती, सिरसे पैरतक एक सिहरन-सी दौड जाती, कोई चुपकेसे कह जाता—खबरदार, जो आगे कदम बढाया! लेकिन वह मजबूर थी और इस मजबूरीकी कहानी थी । उस दिन वह गाय दुहकर लौट रही थी। उसने देखा—घरके सामने कोई साइकिलपर आ रहा है। वह जैसे ठिठकी, काँपी, चौंकी। दूधका बरतन गिरते-गिरते बचा। सध्याके धुधले प्रकाशमे कुछ ऐसा नजर आया, जैसा वह तीन वर्ष पहले देखा करती थी। उसने आँखे बन्द कर ली, लेकिन क्षण बीता, वे फिर खुल गयी और उसने अचरजसे देखा—वह उसका देवर था। ओह! यह तो ठीक उसी जैसा लगता है।

तबतक साइकिल वहाँ आ चुकी थी। वह अन्दर चली गयी। घरमें उस समय कोई नही था। सब खेतपर गये हुए थे। देवर सदाकी भाँति अन्दर आया, परन्तु आज उसका चेहरा तमतमा रहा था, पैर सीधे नहीं पडते थे। उसने आते ही कहा, "भाभी! मुझे बुखार चढा है।"

"बुखार!" वह काँप उठी। शीघ्रतासे चारपाई बिछा दी। बोली, "पानी लाऊँ?"

या उसके पैर पकडकर कहूँ, तू मुझे माफ कर दे, लेकिन वह कुछ भी नही कर सकी, केवल बैठी देखती रही और वह बेचैनीसे करवटे वदलता रहा। बार बार पुकारता, "दद्दा, अम्मा।"

"अभी नही आये।"

"अभीतक?"

"हाँ।"

और वह 'अच्छा' कहके सोनेकी चेष्टा करता, लेकिन छातीकी मीठी-मीठी जलन उसे वेचैन वना देती। वह तडप उठता, "अम्मा, अम्मा!"

"अभी नही आयी।"—जवाव मिलता।

"ओह! भाभी, उलटी आती है!"

और कहते-कहते सचमुच उसका कलेजा उलट पडा। भाभीने शीघ्रतासे उठकर माथा पकडा। वहुत देरतक जोरसे पकडे रही और जव देवरने कहा, "भाभी, पानी दे।" तो भाभी चौंक पडी। पानी लायी। तवतक चॉदनी काफी फैल चुकी थी। हाथ धुलाते-धुलाते उसने देखा—उन दोनोकी परछाई एक होकर दीवारपर चिपक गई है, जैसे किसीने चित्र अकित कर दिया हो। तव यकायक उसने अपने निचले ओठको जोरसे दॉतोमे दवा लिया, लेकिन देवरको तवतक शान्ति मिल चुकी थी। वह लेट गया और चादर ओढकर करवट वदल ली। लोटा हाथमे लिये वह देरतक वही खडी रही। न बैठ सकी, न कुछ काम कर सकी, केवल एक तूफान उसके भीतर उठता रहा। उस तूफानमे विचारोका जमघट तो नही था, लेकिन एक ही विचारके इतने रूप थे कि वे उसे अलग अलग जान पडे।

और उसी दिनसे उसके जीवनमे एक परिवर्तन आ गया। उसका दुख तो तीव्र होता जा रहा था, परन्तु उस तीव्रतामे मिठास और आशाका सवल काफी गहरा हो चला। इसी सवलके कारण दुखकी तीव्रता उसे सताने लगी और चुपचाप ताने सुननेके स्थानपर वह जवाव देने लगी। वडी-

वरावरकी बोली, "एक दिन जिसे ठुकरा दिया था, अब उसीके तलुए चाटना चाहती है। छातीमे उफान उठते होगे, दिलमे आग लगती होगी।" बडे-बूढे पुरुष सिर हिलाकर रह गये, लेकिन युवकोने खूब मनके लड्डू फोडे। जो जी मे आया, कहा और जव सन्ध्याको उसका देवर शहरसे लौटा तो उसके पीछे पड गये, "तू बडा घाघ है रे। चुपचाप भाभीको फुसलाता रहा। घरका माल कौन वाहर जाने देता है जी।"

उसने अचरजसे भरकर उन्हे देखा और पूछा, "तुम कहते क्या हो?"

"यही कि जनाव अव भाभीपर रीझे है।"

"और कि आप उसे अपने घर वैठानेवाले है।"

उसने यह सव सुन तो लिया, लेकिन चेहरा तमतमा उठा। शरीर कॉपने लगा। उसने कहा, "मुझे वह दिन याद है। मै मर्द हू और मर्द होकर औरतकी ठोकर नही भूल सकता।"

"लेकिन", एक साथीने कुछ कहना चाहा।

वह वीचमे ही वोल उठा, "लेकिन-वेकिन मै कुछ नही जानता। मै केवल इतना जानता हू कि मेरा उसका विवाह इस दुनियामे एकदम नामुमकिन है।"

ओर आगे विना कुछ कहे वह तेजीसे घर चला गया। जाते ही चीख-कर मॉको पुकारा, "अम्मा! यह सब क्या वाते है?"

मॉं चौक पडी, "क्या वात रे?"

उसी तेजीसे वह वोला, "यही कि ।"

लेकिन जैसे ब्रेक लग गया। भाभी उधरसे जा रही थी। वह घवरा-सा उठा और उसने वात फेरकर कहा, "यही कि तुम मुझे आगे पढने नही भेजना चाहती।"

मॉ अचरजसे बोली, "किसने कहा तुझसे? मैने तो सिर्फ एक वार तेरे वापसे कहा था कि ।"

और इतना कहकर वह तेजीसे नीचे उतर गया। चित्रा भाभी एकदम स्तम्भित-सी रह गयी। मगर आप ही आप दीवारसे सट गयी और उसने ऊपरको ऐसे देखा जैसे आसमान फट गया हो। करारी चोट थी। कोई और होता तो तिलमिला उठता, लेकिन वह चुपचाप उठ खड़ी हुई और टोकरी उठाकर नीचे चली गयी। मनमें एक बार इतना ही उठा कि कसूर मेरा है। मैं उसके पैर पकड़कर कहूँगी, तू मुझे मार डाल, लेकिन ।

जीनेसे उतरते उतरते उसने कुछ सुना। पासकी कोठरीमें ससुर उसका नाम लेकर कुछ कह रहे थे। वह वहीं रुक गयी। तब

सन्ध्याका अँधेरा कुछ गहरा हो गया था और अन्दर कड़वे तेलके दीयेके मन्द प्रकाशमे खाटपर बैठे उसके ससुर कह रहे थे "मैंने उनसे पूछ लिया है, वे राज़ी है।"

सास बोली, "तो अब देर मत करो। मै तो रात-रात नही सोती। न जाने सवेरे क्या सुनना पड़े ? जवान बहू है।"

"लेकिन एक बार उससे पूछ तो लो।"

"नही," सास तेजीसे बोली, "पूछना बूछना अब कुछ नही है। एक बार पूछा था, तो यह दिन देखना पड़ा। अब पूछोगे तो शायद कुएँ-खाईमे पड़नेकी नौबत आयेगी।" उसने इन शब्दोको सुना और समझा। उपलोकी टोकरी वही रख दी। घूघट खीचकर सीधी कोठरीमे चली गई। सास जहाँ बैठी थी, वही उनके पैर छूकर बोली, "आप ठीक कहती है। अब पूछनेकी ज़रूरत नही है। मै आज ही जानेको तैयार हू।"

कहकर मुड़ना चाहती थी, परन्तु न जाने क्या हुआ ? सिर बड़े ज़ोरसे चकराया, आखोके आगे अधेरा छा गया और वह खड़ीकी खड़ी वही सासके पैरो पास चक्कर खाकर गिर पड़ी।

१९४३]

■ ■
■

रायबहादुरकी मौत

सत नाम, सत नाम, सत नाम जी,

वाह गुरु, वाह गुरु, वाह गुरु जी,

तभी मेरे रातवाले साथीने मुझे देखा। वह मेरे पास आकर बोला, 'बड़े साहब क्या सिख हैं?'

मैंने कहा, बड़े साहब बड़े साहब हैं। बड़े आदमियोंकी तरह वे

उदारमना है। मरनेवालेका कल्याण हो इसलिए उनकी पत्नीने किसी धर्म-गुरुको बुला भेजा होगा। बुलानेवाला सिख होगा इसलिए ग्रन्थी आये है।'

वह मुस्कराया, 'मै जानता हूँ यही बात होगी अन्यथा बडे साहब तो धर्ममे विश्वास नही करते।'

'विश्वास कौन करता है ?' मैने कहा, 'यह तो दुनियाको दिखानेकी बात है। इस विशाल जनसमूहको देखो ! क्या ये लोग रायबहादुरसे प्रेम करते हैं ? क्या इन चार दिनोमे तुमने जो कुछ देखा है उससे इसकी कोई तुलना है ?'

सहसा उसकी वाणी तलखाहटसे भर उठी। वह बोला, 'ऐसे पापीका इतना शानदार अन्त !'

तीसरा साथी जो अबतक चुपचाप खडा था, बोला, 'शानदार अन्त ! दुश्मनको भी यह अन्त नसीब न हो, मेरे दोस्त ! नरक और किसे कहते हैं ? चार दिन प्राण शरीरसे निकलनेको तडपते रहे, यह यातना क्या रौरव नरककी पीडासे कम है ?'

और फिर क्षण भर भीड़पर एक दृष्टि डालकर उसने कहा, 'मौत मैंने देखी है। मेरे एक मित्र हैं। एक दिन उनके पिता नलपर स्नान कर रहे थे। साथ ही साथ बात भी करते जा रहे थे, परन्तु जैसे ही उन्होने लोटा उठाकर सिरपर पानी डालना चाहा, वाणी बन्द हो गयी। अचरजसे हमने देखा—वे शान्त स्तब्ध दीवारके सहारे लुढक गये हैं और उनका मुख इस प्रकार खुला हुआ है मानो कुछ कहना चाहते है। मृत्यु वह थी, शानदार मृत्यु ! आयी और प्राणोको आलिगनमे बाधकर ले गयी, मानो प्राण उसकी राह देख रहे थे।'

धीरे-धीरे कई और मित्र हमारी टोलीमे आ मिले। वे तरह-तरहकी बाते कहने लगे परन्तु उन सबका सम्बन्ध रायबहादुरकी मौतसे ही था।

एक साथी बोले, 'इन चार दिनोमे ये सब लोग कहा थे? कोई भी पास आकर नही फटका।'

मैने कहा, 'विज्ञानके युगमे आनेकी आवश्यकता नही होती।'

'क्यो?'

'क्योकि आना सहानुभूतिके लिए होता है और वह टेलीफोन द्वारा बड़ी सरलतासे भेजी जा सकती है।'

'और वह प्यारी भी लगती है', तीसरे मित्र बोले।

'जी हॉ', दूसरे साथीने कहा, 'उसी प्रकार जिस प्रकार नाटकके सामने चलचित्र प्यारा लगता है। परसो रायबहादुरके पास मेरी ड्यूटी थी। तब नहरके बडे साहबका फोन आया था। वे बडे कोमल स्वरमे कह रहे थे, 'मिसेज गुप्ता! मुझे आपसे हार्दिक सहानुभूति है।' मिसेज बोली, 'आपकी हमदर्दीके सहारे ।' वे उसी तरह कहते रहे, 'मुझे बहुत दु ख है, मिसेज गुप्ता! निस्सन्देह मुझे बहुत दु ख है। हम सचमुच कितने असहाय है। नही, नही। बताइये मैं आपके लिए क्या कर सकता हू?'

'मै यदि मेम साहब होता, तीसरे बन्धु बोले, तो उसी क्षण कहता आप मेरे लिए मर सकते है।'

उनकी बात सुनकर हम हँस पडे पर बबूला जैसे ही उठा तैसे ही पानी पडी हुई गरम राखकी तरह दब गया। हमने चारो ओर देखा—बहुत सारे गिरोह चुपचाप बातोमे व्यस्त है और ऊपरसे कभी-कभी मन्त्र-ध्वनिके साथ रुदनका स्वर भी उठने लगता है। मेरे रातवाले साथीने उस ओर बिना ध्यान दिये कहा, 'और जानते हो, फोनपर बात करते समय वे क्या करते है?'

'क्या करते है?'

'वे तब पपीको बडे प्यारसे थपथपाते है या रस ले लेकर शराबकी घूंट भरते है।'

दूसरे साथी बोले, 'दुख यही है कि टेलीफोनसे केवल शब्द जा सकता है, गन्ध नही। यदि गन्ध भी जा पाती तो मेम साहबके प्यासे ओठ ।'

वाक्य पूरा होनेसे पहले ही मेरे साथी फिर मुस्कराये परन्तु तब मुझे यह मुस्कराहट बडी वीभत्स लगी। मैंने चाहा कि तीव्रतासे इसका प्रतिवाद करूँ परन्तु शब्द कण्ठमे आकर अटक गये और मेरी आँखोके आगे रातका दृश्य आपसे आप उभर आया।

खाना खाकर जब मै कोठीपर लौटा तो रात हो चुकी थी। सब ओर प्राय अन्धकार ही अन्धकार था। मैंने चुपचाप ड्राइगरूमका द्वार खोला, देखा—सामने बडे साहब टहल रहे है। वे अकेले थे और निश्चय ही उन्हे ब्रिज पार्टीकी याद आ रही थी। वे ब्रिजके प्रसिद्ध खिलाडी थे, और प्रतिदिन सन्ध्याके समय उनकी पार्टी जमती थी और उस हा-हूके बीच जब बैरा लोग जिन और सोडेके गिलास लिये इधर-उधर दौडा करते थे, वे पाइटपर पाइट जीतते चले जाते थे। मुझे देखकर वे मुस्कराये। बोले, 'तुम आ गये।'

'जी हाँ।'

'धन्यवाद!' उन्होने कहा और फिर टहलने लगे। मै अन्दर चला गया। रायबहादुर जिस कमरेमे लेटे हुए थे वह अतिथि-गृह था इसलिए उसमे न विशेष सजावट थी न विशेष फरनीचर। दरवाजेपर हरे पर्दे थे और फर्शपर नीली दरी। शेष सामानमे आवश्यकतानुसार मेज, कुर्सियाँ, रेक और छोटी टेबुले थी। वे स्प्रिंगदार पलगपर लेटे थे जिसपर नरम और मुलायम गद्दे बिछे हुए थे। जब मैंने उन्हे देखा, तो उनके नेत्र अर्द्ध-उन्मीलित थे। नीचेका ओठ बराबर हिल रहा था और उनका दाहिना हाथ रह-रहकर फडक उठता था। शेष शरीर निर्जीव और शान्त था। मै देरतक उन्हे देखता रहा। मनुष्यसे बढकर धरतीपर कुछ नही है, यह मैंने पढा था पर यह जो मनुष्य मेरे सामने लेटा है, यह!

तभी मेरे एक साथीने जो वहाँ पहलेसे मौजूद था, पीछेसे, आकर कहा, 'ओ, तुम आ गये, निशिकात !'

मै मुडा, 'जी हाँ ! वताइये मुझे क्या करना होगा।'

'कुछ-भी नही', वह बोला, 'केवल वैठकर मृत्युको आते देखना होगा।'

मै मुस्कराया, 'मृत्यु वडी छलिया है। उसे आते किसने देखा है ?'

उसने कहा। 'परन्तु कान्त ! रायवहादुर मृत्युको स्पष्ट देख रहे है, तभी तो उन्होने प्राणोको दवोच रखा है। तिल-तिलकर मरना यही तो है।'

उसके स्वरमे तलखाहट भरने लगी थी। वह आगे कुछ कहता परन्तु तभी मेम साहवने वहाँ प्रवेश किया। पतली और कोमलागी मेम साहव जो पाउडरकी तह जमा-जमाकर अपनी कीलोको छिपानेमे घटो वरवाद कर देती थी, मुझे उस समय वडी कुरूप जान पडी। लेकिन करुणाके कारण वह कुरूपता दयनीय हो उठी थी। उनकी आखे कह रही थीं, 'मै कितनी निर्बल हू, मेरा कही सम्वल नही।' मुझे इस पुकारसे सन्तोष हुआ। मैने सहानुभूतिसे भरकर कहा, 'मेम साहव ! आपका दुख वहुत वडा है परन्तु आप शान्ति रखे, जो होना था वह तो हो चुका।'

उनकी आखे उवल रही थी। रोते-रोते वे बोली, 'इन्हे इतना कष्ट क्यो है, क्यो ?'

मेरे साथीने कहा, 'परमेश्वरकी माया कौन जानता है, मेम साहव।'

'ओह परमेश्वर', वे सुवकने लगी और फिर सहसा एक क्षण रुककर कहा, 'अब कोई आशा नही ?'

'नही मेम साहव, अव क्या है ?'

वे रायवहादुरके और भी पास आ गयी। वे उस क्षण कितने असहाय थे, परन्तु एक दिन उन्होने ही मेम साहवके शरीरका निर्माण किया था। उसी पुरानी जर्जर शक्तिमे उनके जीवनका स्रोत था। सृष्टिका यही नियम है। दीवेकी जोतकी तरह जीवनकी जोत सदा जलती रहती है।

तेलकी प्रत्येक बूँद आती है और नष्ट हो जाती है, परन्तु जीवनपर उसका प्रभाव नहीं पड़ता।

तब न जाने क्यों इस सत्यके सामने मुझे मेम साहबका रोना अच्छा नहीं लगा। मैंने उधरसे मुँह फेर लिया। मेजपर छोटी-बड़ी शीशियोंका एक बेतरतीब ढेर लगा हुआ था। मैं उनके लेबलपर लिखे नाम पढ़ने लगा—कोरोमिन, ग्लूकोज, मोलो सैप्टेमीमिया, इन्सुलिन इत्यादि, इत्यादि।

धीरे-धीरे कमरेमें कई और आदमी आ गये। वे चपरासी और दूसरे नौकर थे। वे फर्शपर बैठकर कुछ देर शून्यमें ताकते रहे, फिर आपसमें बात करने लगे। सोनेसे पहले बड़े साहब एक बार अन्दर आये, बोले, 'आप लोग चाय पीना पसन्द करेंगे?'

मैंने कुछ अचरजसे कहा, 'जी नहीं।'

'नहीं, आप चाय पीजिये', वे बोले, 'मैं बेरासे कहता हूं। आप रातभर जागेंगे।'

और वे चले गये। कुछ देर बाद बैरा चाय ले आया, बोला, 'बाबूजी! मेम साहबको चाय पिलाकर आया हूं। सच कहता हूँ उन्हें देखकर रोना आता है। मना कर रही थी। मैंने कहा—मेम साहब! आप नहीं पियेंगी तो बाबू लोग भी नहीं पियेंगे। बेचारीको अपने भाईकी बड़ी चिन्ता है। एक अफ्रीकामें है, दूसरा मद्रासमें मिट्टीसे सोना पैदा कर रहा है। बेचारी अकेली बैठी रोया करती है। क्या करें, हम लोगोंकी बीवियोंको तो बात करना भी नहीं आता?

फिर सहसा धीमा पड़कर बोला, 'छोटी बहिन सुनकर भी नहीं आई और न मद्रासवाला भाई आया है।'

बैरा बोले चला जा रहा था और चपरासी उसकी बातोंमें रस ले रहे थे। आखिर उसने मुझसे कहा, 'आप चाय पी लीजिये।'

नहीं।'

'अजी पीजिये भी। आपके क्या लगते है। उनके अपने तो पास भी नही फटकते।'

मै मुस्कराया और चायका प्याला ले लिया। मै तब खडा था। पासके कमरेमे जाकर, जहाँ वस्तुत चाय पीनेका प्रवन्ध था, मैने एक घूँट भरा और प्याला मेजपर रखकर लौट आया। कमरेका एक चक्कर लगाकर मै फिर रायबहादुरको देखने लगा—बच्चोके खिलौनेकी तरह उनका निचला ओठ और दाहिना हाथ बराबर हिल रहा था। सहसा मुझे लगा हाथका यन्त्र धीरे-धीरे बेकार होता जा रहा है। मैने अपने साथीसे कहा,'देखो मित्र! रायबहादुर कैसी घोर यन्त्रणा भोग रहे है?'

साथीने जवाब दिया, 'पापका यही अन्त होता है, कान्त!'

मै मुस्कराया, 'बडे आदमी पाप नही किया करते, दोस्त!'

'मै कुछ नही जानता, आप क्या कहना चाहते है, मेरे साथीने तलखा-हटसे कहा, 'पर मै यह जानता हूँ कि रायबहादुर पापी थे। वे अपने समयके प्रसिद्ध ठेकेदार थे। वे सरकारके लिए नहर ही नही खुदवाते थे कुछ और काम भी करते थे।'

'वह क्या काम था।' मैने अचरजसे पूछा।

वह उठकर मेरे पास आ गया और बोला, 'वे उनके लिए मनो-रजनका साधन भी प्रस्तुत करते थे।'

मेरा कौतूहल बढा। मैने कहा, 'अर्थात्?'

'नही जानते? अग्रेज हिन्दुस्तानी लडकी पसन्द करते है। ठेकेदार साहब उन्हे लडकियाँ भी भेजते थे।'

कह कर वह हँसा, 'बाहरी लडकियाँ ही नही, अपनी लडकियाँ भी! तभी तो आधा काम करनेपर पूरा बिल पास होता था और तभी वे राय-बहादुर बने थे।'

कैसी घृणित बात थी! सुनकर मेरा अन्तर्मन सिहर उठा परन्तु साथ ही मुझे लगा बडे लोगोके सामाजिक व्यवहारको मेरे साथीने यह

रूप दे दिया है। इसलिए शान्त मनसे कहा, 'मेरे दोस्त ! यह नये युगका फैशन है और आप जानते है, फैशन बडे आदमी किया करते है।'

दूसरा साथी जो अबतक चुपचाप बैठा था, बोला, 'निस्सन्देह ऐसा फैशन बडे आदमी किया करते है। इसलिए हम बहुत शीघ्र ही बडे आदमियोका नाश करनेवाले है।'

कहते-कहते उसकी आखे चमक उठी परन्तु उस रात मृत्युके समय मुझे ये बाते अच्छी नही लग रही थी। मैने विषय बदलनेके विचारसे उनका ध्यान रायबहादुरके शरीरकी ओर आकृष्ट किया लेकिन मेरी बात काटकर पहले साथीने कहा, 'अभी आपने पूरी बात नही सुनी है।'

'क्या ?'

'इनकी छोटी लडकी आत्महत्या करके मरी थी।'

'आत्महत्या, क्यो ?'

'क्योकि वह इनकी इच्छा पूरी नही कर सकी। इन्होने उसे नहरके बडे अफसरके पास भेजा था। वह सुन्दरी थी और साहब सौन्दर्यका प्रेमी। परन्तु सुन्दरी लडकीमे तब यकायक न जाने कहासे एक बात पैदा हो गयी—सौन्दर्य मेरा है, मै उसकी स्वामिनी हूँ, जिसे चाहूँगी दूँगी।'

वह साथी कहानी कहना जानता था। मेरी उत्सुकता बढी, 'फिर !'

'फिर यह हुआ कि अफसरने जब उसके सौन्दर्यपर आक्रमण किया, तो वह तिलमिला उठी। क्रोधमे आकर उसने अफसरको पीट डाला।'

'लडकीने ?'

'जी हाँ। वह आजाद लडकी थी और आजादीका अर्थ जानती थी। पिताने जब इस घटनाका समाचार सुना, तो क्रोधसे तमक उठे। उनकी इच्छा-शक्ति प्रबल थी और वे उसका अपमान नही सह सकते थे। परिणाम यह हुआ कि उन्होने आवेशमे आकर लडकीको ज़हर दे दिया . ।'

'जहर !' मेरे मुँहसे निकला, 'तो उसने आत्महत्या नही की !'

'हॉ, वास्तवमे नही की, परन्तु दुनिया तो यही जानती है कि असफल प्रेमके कारण ठेकेदार साहबकी लडकी जहर खाकर मर गयी।'

मै कुछ जवाव नही दे सका। मेरा मन अव आप ही आप क्रोध और घृणासे भरा आ रहा था। दूसरे साथीने फिर उसी तलखीसे कहा, 'इन लोगोका जितनी जल्दी नाश हो उतना ही अच्छा है परन्तु ये मरनेके वाद भी अपने सायेसे चिपटे रहते है।'

मैने उसकी ओर बिना देखे जवाव दिया, 'वही साया हमारी कमजोरी है। उसका नाश, रायवहादुरके नाशसे अधिक आवश्यक है।'

तव चारो ओर सन्नाटा छाया हुआ था। केवल कभी-कभी कमरेकी हवा घूमकर गहर उठती थी और पीछेके जगलमे गीदड वोलने लगते थे। मै उसी तरह खडा था। मेरे मनमे उठ रहा था कि क्या इसी दिनके लिए रायवहादुरने वे सव काम किये थे जिन्हे दुनिया घृणित कहती है। लेकिन दुनिया कहती है परन्तु रायवहादुर उन्हे घृणित नही मानते थे। मैने फिर सोचा—क्या व्यक्ति और समाजकी मान्यताएँ इतनी भिन्न है?

तव मैने गर्दनको झटका दिया। मै विचारोके दलदलमे नही फँसना चाहता था। मै सामाजिक व्यवहारकी स्वतन्त्रता स्वीकार करता था परन्तु साथ ही लडकीकी भी, इसलिए मै फिर रायवहादुरके पास आकर खडा हो गया। मुझे तव वे वीभत्स भेडियेकी तरह भयानक मालूम देने लगे थे। जान पडता था कि उनकी लडकीकी आत्मा उनका कण्ठ आक्रान्त किये हुए थी। मै उनके ऊपर झुक गया। मै जानना चाहता था, क्या सचमुच आत्मा है, क्या सचमुच . ? सहसा तभी मेरी दृष्टि उनके हाथपर गयी। वह शान्त हो चुका था, केवल निचला ओठ फडक रहा था परन्तु बुझते प्रकाशकी तरह वह फडकन धीमी, और धीमी पड रही थी और ये आखे!

मेरा हृदय कॉप उठा—यह है इन्सान! यह है अहम्की प्रतिमूर्ति, ऐश्वर्य और विलासकी प्रतिष्ठा!

मैंने देखा—धीरे-धीरे वह ओठ भी शान्त हो गया है। तो, तो क्या रायबहादुर मर गये ?

मै एक अप्रत्याशित सन्तोषसे भर उठा। मैंने शीघ्रतासे पुकारा, 'दोस्तो ! आखिर रायबहादुर मर गये।'

'मर गये !' मेरे साथी चौककर उठे, 'इत्ती जल्दी !'

कमरेमे फिर चहल-पहल जागी। वारी-वारी हम सबने रायबहादुर-की परीक्षा की। निश्चित हो गया तो मै बडे साहबको सूचना देने चला गया। बाहर ठण्डी हवा चल रही थी और अन्धकार धरतीकी छातीपर तना बैठा था। मैंने देखा—मुक्त आकाशके नीचे खुली छतपर साहब-दम्पती सो रहा है, शान्त और निर्द्वन्द्व। मेम साहबका चेहरा यद्यपि मुरझा रहा है परन्तु नीदने उसपर बच्चोकी-सी बेबसी पैदा कर दी है। सहसा मेरे मनमे एक प्रश्न उठा—इतनी गहरी नीद ! क्या इन्हे दुःख नही है ? क्या ये रायबहादुरको जानते थे ?

कैसा बेहूदा प्रश्न है ? मै शीघ्रतासे बडे साहबके पास पहुँचा।

उन्हे हिलाकर मैंने कहा, 'वे मर गये।'

परन्तु वे नही उठे। मैंने फिर हिलाया। वे कुनमुनाये। मैंने कहा, 'सुनिये तो, वे मर गये।'

'क्या ?'

'रायबहादुर मर गये।'

उन्होंने आँखे खोली। बोले, 'क्या है ?'

मैंने कहा, 'रायबहादुर मर गये।'

'तुम्हे विश्वास है कि उनके प्राण निकल चुके है।' उन्होंने धीरेसे पूछा।

'जी हा।'

उन्होंने राहतकी साँस ली। बोले, 'अच्छा ! तुम जा सकते हो।'

और वे पूर्ववत् सो गये। मै उन्हे देखता ही रहा गया, 'वे दोनों शात, निर्द्वन्द्व गहरी नीदमे सो रहे थे।'

यही आकर सहसा मैंने सुना, ऊपर गहरा चीत्कार उठा है। वह इतना करुण था कि मेरी आंखोमे आसू भर आये। मै ही नही और बहुतसे लोग भी रूमालसे आखे पोछने लगे थे और जल्दी-जल्दी अरथीकी ओर बढ रहे थे, जो कीमती दुशाले और सुगधित पुष्पोसे ढकी हुई थी। ग्रथी लोग धीरे-धीरे पुकार रहे थे :

सत नाम, सत नाम, सत नामजी,
वाह गुरु, वाह गुरु, वाह गुरुजी।

वे कन्धा देनेकी प्रतिस्पर्धामे एक दूसरेसे आगे बढ़ जाना चाहते थे और मै चुपचाप अपने साथियोके साथ पीछे पड गया था। तब सडकके किनारे जो मकान थे उनके बन्द झरोखे धीरेसे खुले और अनेक नरनारियोने उनमेसे झाँककर उस शानदार शव-यात्राको देखा। मेरे पीछेसे किसीने करुण और ईर्ष्या भरे स्वरमे कहा, 'कितना भाग्यशाली व्यक्ति है !' मै न जाने क्यो तिलमिला उठा—भाग्यशाली। आखिर सौभाग्य क्या है, आखिर सत्य क्या है। आखिर क्या कोई ऐसा माईका लाल नही है जो आगे बढकर रायबहादुरको निरावरण कर दे और चिल्लाकर कहे—यह पापी था, यह इस सम्मानका अधिकारी नही है ? क्या इनकी लडकीकी आत्मा कहीसे आकर अपने अपमानका बदला नही ले सकती ?

आत्माका ध्यान आते ही मेरी ऑखे ऊपर उठी। वहाँ सदाकी तरह निपट नीला आकाश था, जिसमे चीले उड़ रही थी।

फिर मैंने अपनी भुजाओको देखा, उनमे ऐठन पैदा होने लगी थी और भीड आगे बढ रही थी। और शब्द उठ रहा था .

सत नाम, सत नाम, सत नामजी,
वाह गुरु, वाह गुरु, वाह गुरुजी।

[१९४८]

संघर्षके बाद

अतुल भोजन करके उठा तो माँ बोली, "तू निर्वाणके पास गया था, बेटा?"

अतुलने कहा, "नही।"

माँ नही बोली, कुछ सोचने लगी।

अतुलने ही फिर कहा, "वहाँ जानेसे क्या होगा, माँ? भइया मेरी बात नही सुनेगे।"

न जाने क्यो माँकी आँखे डबडबा आई। आँचलसे आँसू पोछकर वे इतना ही बोली, "तो क्या मुझे ही उसके पास जाना पडेगा?"

अतुल झिझका नही। बोला "अगर भाभीको घर न ला सकी, तो जानेसे क्या होगा, माँ?"

माँका साहस टूट गया। वे चुपचाप चली गईं। मणि भी माँ-बेटेकी बाते सुन रही थी। माँकी यह असहायावस्था उससे न देखी गई। उसने कहा, "कुछ तो करना ही होगा, नही तो माँका जीवन सकटमे जान पडता है।"

अतुलने मणिको देखा, मानो कहते हो, क्या तुम इन बातोको नही समझती? बोले, "माँ जब भाभीको घरमे नही रखना चाहती, तब भइया कैसे आवे?"

"लेकिन आप अपने भइयाको समझाते क्यो नही? बहूके लिए भी कोई माँको छोडता है?"

"भइयामे एक दोष है, मणि। वे जो एक बात कह देते है, उसे करना जानते है। मै ऐसा नही हूँ। अगर मै भी ऐसा ही होता, तो तुम्हे राजरानीके पदपर न ला बिठाता।"

मणिने जाना वे हँसी कर रहे है उसीसे खिन्न होकर बोली, "आप वहाँ

जाते ही कब है ? मॉका दिल दुखानेके लिए आप दोनो भाइयोने एका कर लिया है।"

अतुलने इस बार लवी सॉस छोडकर कहा, "यही तो अच्छा है मै भइयासे एका नही कर सका, मणि। परन्तु इन बातोसे क्या ? मै कुछ भी नही कर सकूँगा।"

और वे चले गये। मणि उनकी ओर देखती खडी रह गई, जैसे वह स्वय अचरजकी साकार प्रतिमा वन गई हो। वह देखनेमे अधिक गोरी-चिट्टी नही है, परन्तु परमात्माने जो स्वरूप उसे दिया है वह विरलेको ही मिलता है। वह बडे घरकी लाडली बेटी और वडे घरकी मुहचढी वहू भी है। जब मॉ अपने वडे बेटे निर्वाणको विवाहके लिए विवश न कर सकी, तो अतुलको लेकर ही वह मणिको अपने घर ले आई थी। इसी बीचमे निर्वाण कायस्थ-कुलकी एक बगाली वालिकाको परिणय-वधनमे बाँध लाये। पैत्रिक सपत्तिका सारा भाग छोटे भाईके नाम करके वे म्युनिसपल-ऑफिसमे काम करने लगे। हृदयपर पत्थर रखकर मॉने इस अनहोने परिवर्तनको देखा और पख-हीन पक्षीकी भाति तडपकर रह गई। उसके हृदयके अन्तरतम प्रदेशमे बेटेकी जो ममता फलती-फूलती आ रही थी, वही अब कसक बनकर टीसने लगी।

× × ×

अपनी वातकी इस प्रकार अवहेलना होती देखकर लाडिली वहू मणि खीज उठी। मन ही मन पतिको खरी-खोटी सुनाकर उसने एक महा भयकर प्रतिज्ञा कर डाली, "मै आज जीजीके पास जाकर इस बातका निर्णय करूँगी और देखूँगी वडे भइया किस प्रकार मॉकी ममताको ठुकराते है।"

तब शीघ्र ही घरका काम सँभालकर इसने जानेके लिए चादर ओढ ली। मॉ उस समय सो रही थी। नौकरसे कह गई, "कह देना, आनन्दी बाबूके घर गई है।"

नौकरने कहा, "टमटम ले आऊँ ?"

परन्तु उसने किरायेका ताँगा ही ठीक समझा। बोली, "कल्याण टोलेमे निर्वाणबाबूका घर है। वही चलो।"

तब शहरकी चिरपरिचित सडकोपर चक्कर काटकर बाजारी ताँगा, खड-खड ध्वनिसे उस सुनसान दुपहरीको जगाता हुआ, कल्याण टोलेके सामने आ खडा हुआ। 'हटो', 'बचो'। 'बचकर मेरे खिलाडी।' ऐसा बोलनेके लिए वहाँ कौन था ? कुत्ते भी सडकसे हटकर सायेमे पडे थे। इसीसे अब वह बोला, "फिर आना होगा बहूजी ?"

"नही !" और वह निर्वाण बाबूकी बैठकमे जा खडी हुई।

हेमागिनी उर्फ हेमाने ताँगेको अपने द्वारपर रुकते देखा, तो अचरजसे सोचने लगी—इस वक्त कौन आया ?

और जब मणि ठीक उसके सामने आ पहुँची, तो वे दोनो ही चौक पडी।

मणिने हेमाके जैसा सुन्दर रूप कभी नही देखा था। जो उसे एक बार देख लेता था, फिर भूलता नही था, अपितु बार-बार देखनेकी चाह मनको व्याकुल करती रहती थी। बडी-बडी काली आँखे और उनमे शैशवका भोलापन। चेहरेपर पत्नीत्वके कारण, अनजानसे पैदा हो गई लज्जाकी लाली और उसके साथ अल्हडपनकी हर वक्त रहनेवाली हँसी। बगाली रीतिसे गुँथे हुए बाल और चिट्टा रग। ऐसी स्त्री कितनी सुन्दर होगी, वही जाने जिसने देखी हो। इसीसे मणि चौंकी थी।

हेमा भी चौकी थी। क्योकि बिना किसी झिझकके मणि उसके सामने ऐसे जा खडी हुई, मानो बहुत दिनोका जाना पहचाना माँ-बापका घर हो।

आगन्तुकका स्वागत कैसे करे, इस बातको भूलकर हेमाने अचल गलेमे डालकर मणिको प्रणाम करनेकी चेष्टा की, तब मणि हँस पडी, "प्रणाम तो मुझे करना चाहिए था, जीजी ! मै तो नाते और उमर सब हीमे तुमसे छोटी हूँ।"

हेमाके मनमे एक अस्पष्ट-सा 'कुछ' उठा, पर वह बोली नही।

मणि ही ने पूछा, "तुमने मुझे पहिचाना नहीं, जीजी ?"

हेमा अचरजसे व्याकुल ही होती रही ।

मणि खिलखिला पडी, "मै तुम्हारी देवरानी हूँ, जीजी ।"

हेमा मानो ठगी गई । बोली, "अरे, तुम हो मणि ! आज देखा है ! आओ, आओ, छोटी दीदी, आज किधर भूल पडी ?"

और वे कमरेमे आकर बैठ गई । मणिने एक ही दृष्टिमे उस कमरेकी तुलना अपने कमरेसे कर डाली । मणिका कमरा सुन्दर था, परन्तु हेमाका कमरा सादगी और स्वच्छतामे उसके कमरेसे कही अच्छा था ।—यह निर्णय करके मणिको सुख और दुःख दोनो ही हुये ।

कुछ देरतक वे यो ही बाते करती बैठी रही । मणि किसी प्रकार भी निर्णय नही कर सकी कि अपनी प्रतिज्ञा कैसे पूरी करे ।

हेमा बार-बार कोई-न-कोई घरेलू प्रश्न कर बैठती थी, "माँ कैसी है ?" "अतुल बाबू कैसे है ?" "क्या करते है ?"

और मणि सक्षेपमे कहती, "अच्छी है", "अच्छे है ।" "जमीन्दारीका काम देखते है ।"

फिर सोचने लगती, 'क्या करूँ ? वे सच कहते है । मै कुछ भी नही कर सकूँगा । भला ऐसी भोली-भाली जीजीसे इतनी कडवी बात कोई कैसे कहे ? फिर ध्यान आता—कुछ भी हो, यह तो करना ही होगा । माँकी बात है ।

इसी उधेड-बुनमे वह खीझ-सी आई, पर हेमा खीझने देती तब न । बहुत दिनोके बाद एक आत्मीय मिला था ।

तभी सहसा मणि बोली, "एक बात कहती हूँ, जीजी !"

जीजी नही बोली पर हृदयमे जो गाँठ-सी बँधती आ रही थी वह और भी जटिल हो गई । मणि कहती रही, "पिछले जन्ममे तुम-हम लोगोकी दुश्मनी थी, जीजी !"

जीजी गुम ! अन्दरका अस्पष्ट 'कुछ' जैसे स्पष्ट हो चला। गाँठ भी ढीली पडने लगी। मणि और भी निर्द्वन्द्व हुई, "यदि तुम दुश्मन न होती, तो माँ-बेटेमे, भाई-भाईमे इस प्रकार द्रोह न पैदा करती। एक हरी-भरी गिरस्तीको बरबाद न करती !"

जीजी अब भी चुप थी। उसके लिए सब स्पष्ट हो उठा था। कल्पना प्रत्यक्ष होकर सामने आकर खडी हो गई थी।

मणि भी अब चुप हो गई। मानो उत्तरकी बाट देखती हो। कुछ क्षण बाद जीजी उसके पास आकर बोली, "लेकिन मेरा तो इसमे कुछ भी दोष नही, मणी !"

मणि यह सुनकर उठ खडी हुई और बोली, "है क्यो नही जीजी ? तुम न होती, तो बडे भइया हम लोगोको इस तरह न छोड देते।"

ना-समझीकी इस बातपर हेमा हँस पडी, "अच्छा, लेकिन तुम जा क्यो रही हो ?"

मणि नही रुकी।

तब हेमाने सुनाकर कहा, "अच्छा होता ये सब बाते उनसे कही जाती।"

मणिने सुना और मुडकर बोली, "तुम कह दोगी न जीजी !"

ओर मणि चली गई।

× × ×

सब कुछ भूलकर हेमा सोचने लगी, 'मुझसे ही क्यो कहते है ? उनसे कोई नही बोलता। वे ही तो मुझे लाये थे। उस दिन उनके घरकी ब्राह्मणी न जाने क्या-क्या कह रही थी। जो आती है कुछ-न-कुछ सुना जाती है।

उसे दु ख हुआ, आँखोमे आँसू भर आये।

उस समय सन्ध्या भागी आ रही थी। सूरजकी तेजी घटने लगी। प्रकाश भी मन्द हो चला। घडीकी सुइयोने एक करवट ली। छ बज गये और निर्वाण दफ्तरसे लौट आये।

हेमाने अचरजसे देखा—वे अकेले नही है, अतुल भी है। उसकी छातीके भीतर धुकर-धुकर होने लगी। मन ही मन उसने कहा, "आज क्या होनेवाला है, प्रभो !"

कुछ देर बैठकर अतुल लौटने लगा, तो हेमा सामने आ खडी हुई। रोते-रोते उसकी आँखे लाल हो रही थी। हँसमुख चेहरा मुरझा गया था, जैसे अनन्त शोक-सागरमे गहरी डुबकी लगाई हो।

अतुल चौक पडा, "अरे, तुम हो भाभी ! पर तुम रो क्यो रही हो ?"

सँभलकर हेमा बोली, "तुम लोग मुझसे क्या चाहते हो, अतुल बाबू ?"

अतुलको और भी अचरज हुआ, "मै तो कुछ भी नही चाहता, तुम कह क्या रही हो ?"

"यही कि तुम यहाँ क्यो आये थे ?"

"चुगीके बारेमे कुछ पूछना था।"

साडीका छोर हाथमे थामे-थामे हेमा न-जाने क्या सोचकर बोल उठी, "अच्छा, तो रोटी खाकर जाना।"

अतुल हँस पडा, "बस, यही बात है। मै बैठा हूँ, लाओ, क्या खिलाती हो ? नेकीके लिए पूछना नही पडता, भाभी।"

तब हेमा निर्वाणके पास पहुँची। बोली, "सुनते हो, मैने अतुलको खाना खानेके लिए कहा है।"

निर्वाण कुछ घबराकर बोले, "क्या अतुल हमारे घर खानेके लिए तैयार है ?"

"हाँ !" कहकर हेमा रसोईघरमे चली गई।

तब दोनो भाइयोने एकसाथ भोजन किया। कई बार दोनोकी आँखे भीगी और सूख गई। कई बार दोनोकी छातीके भीतर अनेक भावनाएँ पैदा हुई और मिट गई, मानो नदीकी तरगे एक-दूसरेको नष्ट करती हुई अनन्तकी ओर बह चली हो। अन्तमे अतुल बोला, "बहुत दिनोके बाद इकट्ठे बैठकर खाना खाया है, भइया।"

निर्वाणने कहा, "हाँ, बहुत ही दिन बीत गये, पर अतुल ! तुम माँसे तो न कहोगे न ?"

अतुल बोला, "नही कहूँगा ।"

और भइया कुछ और न कहे, ऐसा सोचकर भाभीको प्रणाम करके बोला, "अब चलता हूँ, भाभी। परन्तु जब तुम खाना खिलानेके लिए बुलाओगी तो मना नही करूँगा ।"

हेमा हँस पडी। उस दिन उसने जाना कि प्रकृतिमे भिन्न होकर भी दोनो भाई कितने पास है। वे लोग इस बातको नही पहचान पाये है। मैंने जाना है, तब क्यो भय खाऊँ।

और उसकी आँखोमे हर्षके आँसू भर आये।

× × ×

आज ब्राह्मणीने आते ही मणिको सूचित कर दिया है, "निर्वाणको हैजा हुआ है ।"

अतुल बोले, "मै तो जानता था, दिन-दुपहरीमे काम करना पडता है, बीचमे जलपान करनेतकको नही मिलता। न जाने इतने दिनतक भाभी उन्हे कैसे जीवित रख सकी ।"

माँने भी सुना। उनका दिल रो पडा। वह उसी समय जानेको तैयार हुई, परन्तु अतुलकी अंतिम बात सुनकर ठिठक गई। उसी अभागिनने मेरे बेटेको छीना है! उसे ही उसे बचाना पडेगा।

वह नही गई, परन्तु दिल नही माना, ब्राह्मणीको बुलाकर बोली, "तुम अभी जाकर देखो, उसका क्या हाल है ?"

और वह रो पडी। बार-बार यही ध्यान आया—'क्या वे बिना हेमाके निर्वाणको अपने घर ला सकेंगी ?'

उधर मणिने अतुलसे कहा, "तुम वहाँ नही जाओगे क्या ?"

"नही।" अतुलका संक्षिप्त उत्तर था।

"भाईको मरते देखकर भी तुम्हारा दिल नही पसीजता ?"

"भइयाको तुम जानती होती, तो ऐसा न कहती। मेरे डाक्टरको वे पास भी नही आने देगे।"

"परन्तु अपने आदमीसे ढाढस तो होगा ही।"

"भाभीसे बढकर उनका अपना कौन है ? उनके होते हमे कुछ भी करनेका अधिकार नही है।"

मणि अब नही बोली। अतुल ही बोला, "तुम ही वहाँ क्यो नही चली जाती ?"

मणिने ऑचलसे ऑसू पोछकर कहा, "उस दिन नादानीसे मै जीजीको न जाने क्या-क्या कह आई थी। क्या मै अब वहाँ जा सकूँगी ?"

"तो फिर उनका भगवान् मालिक है। अपना काम करो।"

अतुल अपना काम करने लगा। मणि भारी मन लेकर उठ गई।

× × ×

निर्वाण रोग-मुक्त हुए।

चार रात रोगी स्वामीके पलगकी पट्टीसे लगकर हेमाने उनकी रक्षा की। ससारवालोने नही जाना, उनपर क्या बीती। उनके पास आता भी कौन था। हिन्दू-धर्मके अछूतोसे बढकर उन लोगोकी दशा थी। अपने ऑचलको गलेमे डालकर वह बार-बार ऊपरकी ओर देखकर कह उठती, "मेरी लाज तुम्हारे ही हाथोमे है, मेरे प्रभु !"

उसकी लाज तो बच गई, परन्तु वह न बच सकी। अनवरत परिश्रम और रोगीकी परिचर्याके कारण एक दिन उसे भी खाटकी शरण लेनी पडी।

निर्वाण स्वय निर्बल थे। पास पैसा नही था। आडे वक्तका कोई साथी भी नही था। किसीके आगे गिडगिडानेका, सबको अपनी अवस्था सुनाकर ऑसू बहानेका उनका स्वभाव नही था। इन बातोका वही परिणाम हुआ जो होना चाहिए था। हेमा धीरे-धीरे घुलने लगी।

और तभी एक दिन हेमाने निर्वाणसे कहा, "अब मै नही बचूँगी।"

हठी निर्वाण इन वातोको सुननेका आदी नही था, रो पडा।

"छि ! छि !" हेमा बोली, "पुरुष भी कही रोते है ! जब आप बीमार थे, मैं तो एक बार भी नही रोई थी।"

निर्वाण बोला, "लेकिन हेम ! तुम्हारे विना नही जी सकूँगा, यह जानता हूँ।"

हाथ पकडकर हेमा बोली, "माँके पास चले जाना।" और उसका गला भर आया।

सहसा निर्वाणको कुछ ध्यान आया। हेमासे बोला, "अभी आऊँगा।" और वह अपने पुराने खान्दानी डाक्टरके पास दौडा गया। घर रास्तेमे पडता था। जी मे आया, कहता चलूँ, "अव वह मर रही है, माँ ! एक बार चलकर देख लो।" अतुलने भी देखा—भइया है। पर दोनो मौन रहे। निर्वाण नही रुका। डाक्टरके पास जाकर रो पडा, "डाक्टर चाचा ! आज वह मर रही है। एक बार चलकर देख भर लो। मै जन्म भर तुम्हारी नौकरी करूँगा।"

गोदमे खिलाये हुए अपने मित्रके लडकेको रोता देखकर डाक्टर चाचा हडबडा उठे, "अरे तुम हो निर्वाण ! तुम पहले क्यो नही आये ? अतुलने भी तो कुछ नही कहा। चलो, चलो मैं देखता हूँ।"

× × ×

सन्ध्याको जब अतुल लौटा तो कहने लगा, "भाभीने जान खपाकर भइयाको तो बचा लिया, परन्तु भइयामे इतनी जान कहाँ जो भाभीकी रक्षा कर सके। पैसा पास नही। अजीब आदमी है, जो कह दिया वह करके ही दिखावेगे।"

मणि सब सुन रही थी। घबराकर बोली, "क्या तुम वहाँ गये थे ?"

"नही।"

इतने हीमे माँने आकर कहा, "क्या सच ही निर्वाणकी बहू नही बचेगी, अतुल ?" उनकी आवाज भारी थी। जी भरा आ रहा था।

"सुना तो ऐसा ही है।" अतुल बोला।

अब माँ रो पडी, "तो अतुल, तू एक बार मुझे वहाँ ले चल!"

अतुलने कहा, "अभी चलो, माँ! परन्तु तुम्हारे पहुँचनेसे पहिले ही भाभी वहाँसे चल देगी।"

"नही, अतुल!" माँने अद्‌भुत दृढताके साथ कहा, "मैंने कितने ही पाप क्यो न किये हो, परन्तु उनका इतना भयकर दड भगवान् मुझे देगे, ऐसी मुझे आशा नही है।"

अतुल, माँ और बहूको लेकर जब निर्वाणके घर पहुँचे तो डाक्टर हेमाकी परीक्षा कर रहे थे और निर्वाण सतोषपूर्ण व्यग्रतासे उनके सामने खडे थे। उसने किसीको नही देखा।

चुपचाप उसकी पीठपर हाथ रखकर माँ बोली, "अब तुम्हारी कोई आवश्यकता नही। बाहर जाओ, बैठकमे अतुल है।"

निर्वाणने आश्चर्यसे मुडकर देखा, माँ सामने खडी थी। छातीपर सिर रखकर फफकार उठा, "मुझे माफ कर दो, माँ! ओ माँ!"

किसी तरह छाती दबाकर माँने उसे बाहर भेजा और बहूका सिर अपने गोदमे रखकर बोली, "मै तुम्हारी सास हूँ, हेमा! अब तुम्हे मरनेकी जरूरत नही।"

मणि पागल-सी उन्हे देखती रही। बोलनेके लिए उसे वाणी भी नही मिली। फिर डाक्टरकी ओर देखकर माँ बोली, "देवर! हमारे खान-दानके लिए तुमने जो भी किया उसकी विवेचना करनेका समय अब नही। हेमाको अगर बचा सके, तो समझना मेरा जो कुछ भी है तुम्हारा है।

परन्तु इन सब झगडोसे सदा परे रहनेवाले अतुलकी आँखोसे आँसूकी जो बूंदे टपक पडी थी उन्हे शायद किसीने भी नही देखा।

१९३६]

■ ■
■

स्वप्नमयी

१८-५-४७

प्यारे भइया,

आपके जानेके वाद मै वरावर कहानी लिखनेकी कोशिश करती रही, परन्तु जो कुछ भी मैं लिखती हूँ उससे मुझे स्वय सतोप नही होता। सच तो यह है, आपकी कहानियाँ पढकर मुझे ऐसा लगता है कि मैं कभी कहानी नही लिख सकूँगी। कभी कभी तो मैं आपकी कहानी सामने रख लेती हूँ। आपका प्लाट तो नही चुराती पर शैली जरूर चुराती हूँ। लेकिन चोरीकी चीज़ क्या अपनी होती है? पढनेपर लगता है जैसे आपकी वह कहानी पढ रही हूँ जो शायद आपने अपने साहित्यिक-जीवनके वचपनमे लिखी होगी। तव मुझे अपने ऊपर ग्लानि होने लगती है। जीमे उठता है, सव कुछ फाडकर फेंक दूँ और फिर कभी कहानी लिखनेका नाम न लूँ, पर तभी तुम्हारी बात याद आ जाती है—मनुष्यके कोपमे पराजय शब्द नही है। एक दिन वह अवश्य जीतेगा। जीतनेके लिए प्रयत्न करना ही सवसे वडी सफलता है। तव मै फिर उत्साहसे भरकर पन्ने रँगने लगती हूँ। पन्ने रँग रँगकर ही तो आप आज एक महान् कथाकार वन गये है। मैं भी बनूँगी। तब दुनिया कहेगी—आखिर अमला है तो अजितकी सहोदरा ही!

लो भइया! मैं भी कितनी पगली हूँ। कहानीकी वात करते-करते अपनी प्रशसा करने लगी। तभी तो मुझसे कहानी नही लिखी जाती। पर इधर एक वडा सुन्दर प्लाट मुझे मिला है। मै उसपर कहानी लिख रही हूँ। भेजूँगी पर मैं चाहती हूँ, आप भी उसी प्लाटको लेकर कहानी लिखे। तुलना करनेपर मुझे अपनी कमियाँ आसानीसे दिख सकेंगी।

हमारे घरके सामने एक बहुत सुन्दर हवेली है। उसमे एक ब्राह्मणी रहती है। विधवा है परन्तु एक पुत्र और कई पौत्र है। मैंने उसके पुत्रको देखा है। वह सदा बना-ठना रहता है, सिल्कका कुरता, सिल्ककी टोपी, सुन्दर किनारीकी महीन धोती और विलायती काली सैंडिल। अकसर वह बैठकमे बैठा रहता है। कभी वीणाके तार छेड देता है, तो कभी सितारपर मधुर धुन बजाने लगता है। उसे गाना आता है; मै देखती हूँ वह कभी कभी पत्नीको सामने बैठाकर कोमल स्वरमे गाया करता है। तब मै लज्जासे सिहर उठती हूँ। पर वह सदा रगीनियोमे बहता रहता है।

वह किसी दफ्तरमे काम नही करता। उसका किसी व्यापारसे कोई सबध नही है। सच तो यह है कि वह प्राय अशिक्षित है। फिर भी वह इतना धन कहाँसे लाता है, यह प्रश्न मेरे मनमे बार-बार उठा करता था। कल अचानक एक ऐसी बात हुई जिसके कारण मुझे बिना परिश्रम उस रहस्यका पता चल गया। आप जानते है, स्त्रीको स्त्रीसे मित्रता करनेमे कुछ देर नही लगती है। वह पहली ही भेटमे दिलकी दूरीको मिटा देती है।

कल मै सन्ध्यासे कुछ पहले अपने ऊपरके कमरेमे बैठी हुई पत्रिका पढ रही थी, तभी सुना कोई मुझे पुकार रहा है। दृष्टि उठाकर देखा—उस सुन्दर भवनके ओसारेमे एक युवती खडी है। मै उसे जानती थी। वह ब्राह्मणीके लडकेकी बहू थी, सुन्दर और मृदुभाषी। मैंने मुस्कराकर कहा, "कहो बहिन।"

वह बोली, "आप तो हमसे बात भी नही करती।"

मैंने कहा, "बहिन, मै तो बोलनेको तडपती रहती हूँ, पर तुम्ही ईदका चाँद बनी रहती हो।"

वह हँस पडी, "तो आओ न, मै अकेली हूँ। वे माँके साथ गाँव गये है।" मै खुशी खुशी उसके पास गयी। अन्दर साधारण स्वच्छता थी। हाँ, उसने गहने खूब पहने थे। बातो बातोमे पता लगा, वे लोग जजमानीपर

जीते हैं। राजपूतानेके बडे बडे सेठ उनके जजमान हैं। इस बार माँ बेटेको साथ ले गयी है जिससे जानपहचान बनी रहे।

"पर जी", उसने कहा, "वे इन कामोको अच्छा नही समझते।"

मैंने पूछा, "तो कुछ और काम करते हैं।"

वह हँस पडी, "जी, जबतक बिना मेहनत धन मिलता है तबतक कुछ और नही कर सकते।"

अचरजसे मैंने कहा, "तो क्या इतना धन मिल जाता है?"

बोली, "मिलता था, जी। पर अब क्या है, अब तो सभी सयाने हो गये हैं। अभी रामगढके सेठके यहाँ से जो कुछ मिला है वह पहलेसे बहुत कम है, सिर्फ पाँच तोले सोना है।"

"पाँच तोले", मुझे विश्वास नही हुआ। मैंने पूछा, "पाँच तोले सोना?"

"हाँ जी! केवल पाँच तोले। पहले तो उन्होंने दस दस तोलेतक दिया है। आओ देखो, मैं दिखाती हूँ।"

मैंने देखा तो आँखे खुली रह गयी—दो सुन्दर और कीमती तियले (पोशाक) थी, एक साडी और एक दामन। तीन आभूषण थे—अँगूठी, कर्णफूल और ब्रासलेट। इसके अतिरिक्त पलंगकी निवार, बिस्तर तथा दूसरी अनेक वस्तुएँ थी। मैंने पूछा, "बहिन! किसका विवाह था?"

उसने मुझे अचरजसे देखा। फिर हँसकर बोली, "यह तो सज्जा है जी।"

"सज्जा अर्थात्..?।"

"जी। उनके बडे लडकेकी बहू मर गयी थी।"

सहसा जैसे किसीने मेरी छातीपर मुक्का मार दिया हो। मैंने सोचा—वह मर गयी और इनके लिए ऐश करनेका रास्ता बना गयी। कैसी दुनिया है? कौन जानता है, इस धरतीपर ऐसे लोग भी हैं जिनके लिए मृत्यु विलासिताका साधन है। बिना परिश्रम किये जो खाता है वही तो विलासी है। इसके बाद भइया! मेरा मन नही लगा। वह बेचारी कभी वीणाकी चर्चा

छेडती, कभी सितारका राग सुनाती, परन्तु मै सक्षेपमे उत्तर देकर चुप हो जाती। फिर भी मै मौन नही थी। वह सभवत. मेरे दिलका दर्द जान भी नही सकी होगी।

मै पूछती हूँ भइया, क्या यह कहानी लिखनेका प्लाट नही है। मै तो 'समाजके शत्रु' कहानी लिखने लगी हूँ।

हम दोनो प्रसन्न है। वैसे उन्हे दफ्तरसे फुरसत नही मिलती। हेड वननेवाले है। अणिमा गयी कि नही। मझले भइया तो मदरास पहुँच गये है। वडा लवा प्रोग्राम है उनका ! अरविन्द आश्रम, रमन आश्रम, रामेश्वरम् सभी देखना चाहते है। अच्छा है, मॉको शान्ति मिलेगी। सुना है अरविन्द आश्रममे पुरातन और नवयुगका सुन्दर समन्वय है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवादके इस युगमे ये सव बाते अपना क्या प्रभाव छोडेगी कौन जानता है ?

सवको नमस्कार और प्यार ।

तुम्हारी,
अमला

× × ×

२०-६-४७

प्यारे भइया,

आपका पत्र मिला। आपका मजाक समझती हूँ, पर भइया, इधर कहानीका वह प्लाट मेरे लिए जीवनका दर्द वन गया है। रह रहकर मै सिहर उठती हूँ और मुझे लगता है, जीवन कहानी लिखनेके लिए नही है वल्कि उसका काम कहानियोका निर्माण करना है। कहानी लेखक तो मानो अपनी अकर्मण्यताको शव्दोके आवरणमे छिपाना चाहता है।

परन्तु मै आपको उपदेश देनेकी धृष्टता नही करूँगी। आप नन्दिताको तो जानते है। उसने मेरे साथ मैट्रिक पास किया था। अरे वही, जो कई बार आपसे कविताके अर्थ पूछा करती थी। उसने लखनऊसे बी० ए० पास करनेके वाद, रामगढके सेठ रामदासके छोटे लडके, जगदीशकुमार

एम० ए० के साथ विवाह कर लिया था। वह प्रेम विवाह था परन्तु एक मित्रके कारण उन्हे किसी प्रकारकी तपस्या नही करनी पडी। उनके घर-वाले आज भी नही जानते कि नन्दिता अपने पतिको पाणि-ग्रहणसे पहिले ही वरण कर चुकी थी।

कल अचानक उसीका पत्र मुझे मिला। नौकरानी लायी थी। इधर भी उनकी एक फर्म है और अक्सर वे लोग यहाँ आकर रहते है। पुरानी सहेलीका पत्र पाकर मुझे स्वभावत बडी प्रसन्नता हुई। मै खुशी खुशी उससे मिलने गयी। वे वडे लोग है। उनका भवन विशाल है। उसकी सजावट रईसाना है, परन्तु भइया उनका पहिनावा मुझे वडा वुरा लगा। ऊँचे और भारी दामन जिन्हे वे घाघरा कहती है, चिते हुए दुपट्टे, ऊँची चोलियाँ, जिनमेसे होकर उनका पेट झलकता रहता है। वे गहनोसे लदी रहती है। पैरोकी उगलियोमे चुटकियाँ, फिर कडी, साँठ, नेवरी, छैल कडी। कमरमे तगडी। हाथोमे वन्द, वगडी, पहुँची, छेली, पकडे, दस्तवन्द। गलेमे गलपटिया, मनिया, कटसरी, रामनामी, फूलहार, लाकेट। कानोमे वालियाँ, बुन्दे। माथेपर पट्टी, वोरले—ये कुछ नाम, जो मै याद कर सकी। बोली भी मै उनकी ठीक ठीक नही समझ सकती परन्तु मै जानती थी पुराने लोग आदरके भूखे होते है। मैने पुरातन रीतिसे नन्दिताकी सासके चरण दावे तो वे गद्गद हो उठी। पूछने लगी, "तुम किसकी लडकी हो?' कहाँ रहती हो? बहूको कैसे जानती हो?" मैने उन्हे सक्षेपमे सब कुछ वताकर कहा, "नन्दिता मेरे साथ पढी थी।"

अचरजसे वे वोली, "तो तू भी कालेजमें पढी है?"

"जी नही," मैने कहा, "मैने स्कूलके वाद पढना छोड दिया था।"

"हाँ वहू," वे मुँह वनाकर बोली, "औरत जातके लिए इतना पढना किस कामका? पर आजकलके छोकरे? ना वावा! उनका दिमाग तो आसमानपर रहता है। पढी लिखी वी० ए० पास वहू लेगे। बहू, हम तो एक बात जाने, खानदान अच्छा हो, और खैर, खूबसूरत होना भी ठीक

है। पर यो जो बहू, नयी आग लगी है, सब कालेज पढी छोकरी पसन्द करे है यो तो.. "

वे अपना वाक्य पूरा नही कर पायी थी कि एक लडकी वहाँ आकर मुझसे बोली, "आपको चाचीजी बुलाती है।"

मैने उस लडकीको देखा। कौवोमे हसकी तरह वह मुझे बडी प्यारी लगी। उसने बूटीदार खद्दरका फ्राक पहन रखा था। उसके सुनहले बाल दो वेणियोमे गुथे हुए थे और उसकी हल्की नीली ऑखे, गोरा रग मेरे दिलमे यह सदेह पैदा कर रहा था, कही यह अग्रेजकी लडकी तो नही है!

मेरे मस्तिष्कमे ये विचार एक क्षणमे आये और गये। सेठानी क्रुद्ध स्वरमे बोली, "जा बहू, तू वही जा। हमे क्या बोलना आता है! मेम साहब!"

मै घबरा उठी। मैने शीघ्रतासे कहा, "जी नही। नन्दिताका यह मतलब नही है। शायद वह नही जानती, मै आपसे बाते कर रही हूँ।" परन्तु उनकी तनावट ढीली नही पडी। बोली, "मै उसे जानती हूँ।" और फिर धम धम करती हुई अन्दर चली गयी। मै भौचक-सी उन्हे देखती रह गयी, यह कैसा स्वागत है? एक बार तो जीमे उठा कि मै यहीसे लौट चलूँ पर तभी उस लडकीने मेरा पल्ला पकडकर कहा, "आओ मौसी जी!"

जेठकी दुपहरीमे मानो पूरबी हवाका झोका आया। मेरा अन्तर्मन एक अनिर्वचनीय आनन्दसे भर उठा। मुडकर मै बोली, "चलो, कहाँ चलना होगा।"

"ऊपर!"

जीना सामने था। मार्गमे मैने पूछा, "तुम्हारा क्या नाम है?"

"अपराजिता!"

"इतना सुन्दर," मैने मुस्कराकर कहा, "किसने रखा है?"

"चाचीजीने।"

"और माँने नही?"

अपराजिता बोली, "हमारी माँ नही है।"

आँखे फिर उठी। वह उसी तरह शान्त थी। मुझे अपने ऊपर क्रोध आने लगा। क्यो मैने ऐसा प्रश्न पूछा और तभी मैने सुना किसीने पुकारा, "अमला!"

मुझे रोमाच हो आया। वर्षों बाद यह प्यारा शब्द सुना था। मै उसी तरह मुग्धसी बोली, "नन्दिता!"

देखा—सामनेके द्वारपर नन्दिता खडी है, सुन्दर, मुग्ध और प्रसन्न। शीघ्रतासे लपकी और मुझे छातीसे चिपका लिया। देरतक चिपकाये रही। जब अलग हुई तो मै रो रही थी और वह उसी तरह शान्त थी। केवल आँखे गीली होकर रह गयी थी। बोली, "अमला तुम बहुत अच्छी हो।"

मै हँस पडी, "और तुम बुरी।"

फिर जो बाते हुई उनकी चर्चा बडी लबी है। मुझे लगा उस क्षण जो आनन्द मुझे हुआ वह उसी क्षणमे पैदा हुआ आवेग नही था। वह तो अमर और शाश्वत भावना थी जो समान भावसे मानव जातिको सदा-सदासे ओत प्रोत किये हुए है। तब हमने बच्चोकी तरह अनेक प्रश्न पूछ डाले। पिछले सात वर्षोका सारा जीवन मानो उन कुछ क्षणोमे फिरसे दोहराया गया हो। उसके बाद मैने धीरेसे कहा, "नन्दिता, तुम्हारी सास क्रुद्ध हो रहीं थी।"

नन्दिता विद्रूपसे बोली, "वे और क्या करेगी? परन्तु मुझे उनकी चिन्ता नही है।"

मै मुस्करायी, "मालूम होता है, तुम लोगोकी बनती नही है।"

"छोडो भी", उसने कहा, "क्या बात ले बैठी। सुनाओ, तुम क्या करती हो।"

"कहानी लिखना सीख रही हूँ।"

वह मुस्करायी, "तो जीजाजी कहानी लिखते है?"

"अजी वे क्या कहानी लिखेगे! उन्हे सरकारी कामसे ही फुरसत नही।"

"तो फिर ?" उसने उत्सुकतासे पूछा।

"छोटे भइया।"

"अजित ?"

"हाँ! वे तो प्रसिद्ध कहानीकार है, सभी प्रसिद्ध पत्रिकाओमे उनकी रचनाएँ छपती है।"

नन्दिताका मुख प्रकाशसे चमक उठा, "ओह, तो अजित ये है। उनकी कहानियाँ मैंने बहुत पढी है। वे मुझे बडी प्यारी लगती है, क्योकि वे मनुष्यको जीनेकी प्रेरणा देती है।"

सच भइया! तुम्हारी प्रशसा सुनकर मेरा मन खिल उठा। मैंने गर्वसे भरकर कहा, "आज ही भइयाको लिखूँगी, नन्दिता तुम्हारी बडी प्रशसक है।"

नन्दिता हँस पडी, "अमला, कोई किसीकी प्रशसा नही करता। जो इस योग्य है वह अपनी प्रशसा आप करा लेता है। लेकिन तुमने कितनी कहानियाँ लिखी है ?"

"अरे अभी तो सीख रही हूँ। लिखूँगी तो तुम्हे भी दिखाऊँगी।" और फिर मैंने उसे वही प्लाट बताया। सुनते-सुनते न जाने क्या हुआ। नन्दिताका मुख विवर्ण हो उठा। किसी तरह सँभलकर बोली, "वह मेरी जेठानी थी।"

जैसे कोई अनहोनी बात हुई। मैंने अचरजसे कहा, "तुम्हारी जेठानी ?"

"हाँ। यह अपराजिता उन्हीकी लडकी है।"

"उन्हे क्या हुआ था ?"

नन्दिताकी मुद्रा कठोर हो उठी। उसे अपनेको सभालना कठिन हो रहा था। वह सहसा कुछ जवाब न दे सकी। मुझे लगा जैसे मै किसी भूल-भुलैयामे फँसती जा रही हूँ। मैंने कहा, "नन्दिता, उस दिन उस सज्जाको देखकर मैंने सोचा था, वह वहू अपने कुलकी बडी प्यारी रही होगी पर आज तो लगता है . ।"

बात काटकर नन्दिता बोली, "ठीक ही लगता है अमला! ये लोग उसे प्यार नही करते थे। इन्होने उसे मार डाला था। ये सब कुछ कर सकते हैं। सब कुछ!"

नन्दिता फिर भावावेशमे आने लगी। उसकी जेठानीका नाम विमला था। वे मैट्रिक पास थी परन्तु उनकी भावना गहरी थी। वे कविता किया करती थी और कविताके आवेशमे अकसर स्वप्न देखने लगती थी। वे देशकी परतन्त्रता, निर्धनता और अशिक्षाकी कहानियाँ पढती और कल्पना करने लगती—वे परतन्त्रता, निर्धनता और अशिक्षाको दूर कर सकती हैं और करेगी। वे स्वप्नोमे उलझकर यह भूल जाती थी कि वे धरतीपर रहती है, जहाँ स्वप्न देखना मानसिक रोगका लक्षण है। वे नन्दिताकी जेठानी थी पर उसका आदर करती थी और अपनी कल्पना और कवितामे उसे साझीदार बनाती थी। उनमे एक दुर्गुण था, वे दूसरेकी भावनाओको ठीक-ठीक नही समझ पाती थी, विशेषत दुर्भावनाओको, इसीलिए वे किसीसे अप्रसन्न नही होती थी। वे वस्तुत बहुत भोली थी। वे बहुत सुन्दर नही थी परन्तु पहिली बार जब वे गर्भवती हुई तो उन्होने निश्चय किया—उनकी सन्तान परमगुण सपन्न होनी चाहिए। बस तब उन्होने अनेक सुन्दर नर-नारियोके चित्र मगवाये। वे पुस्तके मगवायी जिनमे महापुरुषो और महान् नारियोके चरित्र अकित थे। चित्रोको देखती और चरित्रोको पढती और यथाशक्ति अपनेको शान्त और प्रसन्न रखती। उनकी इन विचित्र बातोकी कुटुम्बीजन आलोचना तो करते थे परन्तु उनके प्रिय स्वभावके कारण कुछ कह न पाते थे। अपने पतिको वे बेहद प्यार करती थी, इसलिए वे उनकी इच्छाओका आदर करते थे। इन बातोका परिणाम यह हुआ कि उन्होने एक परम सुन्दर नीलनयन कन्याको जन्म दिया। कहते है जन्मके समय दर्दको भूलकर वे दाईसे बोली, "मै शिशुको देखूगी।" और देखकर उनके नेत्र चमक उठे। दाई बोली, "बहूजी! तुम्हारे गर्भसे रतिने जन्म लिया है।"

वे अपनी सफलतापर गर्वसे फूल उठी। तबसे वे और भी कल्पनाओमे

डूबी रहने लगी। उन्होने निश्चय किया, "अपराजिता, मेरे देशकी दूसरी लक्ष्मीबाई बनेगी।"

उन्हे कवितासे प्रेम था। वे अब देशभक्तिपूर्ण कविताएँ लिखने लगी। वे कविताएँ जीवन और मृत्यु—दोनोके प्रगाढ प्रेमकी कल्पनासे ओत-प्रोत होती थी। साथ ही साथ उन्हे लगा, उन्हे स्वय भी देशके लिए काम करना चाहिए। उन्होने पतिसे प्रार्थना की। पतिदेव यद्यपि स्वय जेल हो आये थे परन्तु पत्नीकी यह बात उन्हे अच्छी नही लगी। इतने बडे घरानेकी बहू जेल जाय, यह कल्पना उन्हे कँपा देनेवाली थी। व्यवसायी आदमी थे, दूरकी सोचते थे, इसलिए टाल गये कि समय आनेपर वे साथ साथ देशकी सेवा करेगे। बात कुछ समयके लिए पीछे रह गयी। तभी उनका कुछ दिनके लिए अपने पिताके घर जाना हुआ। उन दिनो वहाँ सत्याग्रह हो रहा था। किसानोने जमीदारके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर दी थी। उनके वकील पिता किसानोके वकील थे। विमलाने यहाँ आकर अपने स्वप्नोको चरितार्थ होते देखा। वे उस युद्धमे रस लेने लगी। वे उनके घर जाकर उनसे बात करती और उनकी सभाओमे कविता पढती। एक दिन एक सभामे विद्रोह भरी कविता पढनेके अपराधमे पकडी गयी।

समाचार ससुराल पहुँचा। जैसे किसीने मुँह पर कालिख पोत दी। वे तिल-मिलाकर रह गये। पतिको भी यह धृष्टता अच्छी नही लगी पर कुलकी लाजका प्रश्न था। वे गये और पैसेके बलपर उन्हे छुडा लाये। विमला प्रसन्न थी। विशेषत इसलिए कि वे फिर गर्भवती थी। उन्हे विश्वास था, उनकी यह सतान देशपर प्राण देनेवाली होगी। पतिसे गद्गद होकर कहा, "हमारी यह सन्तान परम सुन्दर होनेके साथ साथ महान् देशभक्त भी होगी।"

पति मुस्कराये क्योकि वे भी पिता थे, परन्तु बोले, "विमला! कुछ भी हो तुम्हे जेल नही जाना चाहिए था।"

विमलाने जवाब दिया, "मै क्या जेल जाना चाहती थी। वे मुझे

पकडकर ले गये। मै तो केवल किसानोको यह बताने गई थी कि तुम धरतीके बेटे हो। माँ बेटोकी होती है।"

पति हँस पडे, "कवियित्रीजी, तुम निरी कल्पनापर जीना चाहती हो। यह याद रखो, जीवन एक ठोस पदार्थ है।"

विमला बोली, "यह ठोस पदार्थ किसी दिन अवश्य कल्पना रहा होगा। ज्यूँ ज्यूँ कल्पना क्रियामे पलटती गयी जीवन ठोस होता गया। मैं भी यही करती हूँ।"

उन्होने नन्दितासे भी कहा, "देखो नन्दिता ! सुन्दर कल्पनाको जबतक व्यवहारमे नही परखा जा सकता तबतक उसका सत्य प्रकट नही होता।"

नन्दिता ग्रेजुएट थी। वह जिठानीकी बाते सुनकर अचरजसे भर उठती। वह सोचती, कवि सचमुच क्रान्तिद्रष्टा है। वैज्ञानिक अनुसन्धान द्वारा जिस सत्यको खोज निकालता है कवि उसे अनुभूतिसे पा लेता है। वह तबसे विमलाके प्रति और भी आदरसे भर उठी परन्तु उनकी मासको ये बाते बिल्कुल अच्छी नही लगती थी। विशेषकर जेल जानेके बादसे तो वे विमलाकी शत्रु हो उठी—उसने उनके कुलकी सफेद चादरमे काला दाग लगाया था। उसे दण्ड मिलना आवश्यक था। उसे पुत्र द्वारा अपमानित करवाना चाहती थी पर यह सम्भव नही था। अत उन्हे न्यायको अपने हाथमे लेना पडा। वे उन्हे रामगढ ले गयी। वे अकसर वही रहती थी। वह उनके कुलवालोका पुश्तैनी निवासस्थान था, पुराना और रूढियोसे चिपटा हुआ। वहाँ अब भी नारीका अर्थ था—घरकी दासी जिसका स्थान भोजन-गृह और प्रसूति-गृह तक ही सीमित है। वे घरका काम और बच्चे पैदा करनेके लिए खरीदी जाती है। जो धनवान है वे हाथोसे काम नही करती, मुहसे करती है अर्थात् खाती और बाते करती है। विमला इसी श्रेणीमे थी। उन्हे खानेकी आज्ञा थी। उन्हे बात करनेकी आज्ञा थी, परन्तु वह घरसे बाहर नही जा सकती थी। वे तडप उठी।

जैसा कि उसका स्वभाव था उन्होने अपनी साससे कहा, "जी ! मै बाहर घूमना चाहती हूँ।"

सास बोली, "बहू ! यह शहर नही है। तुम्हे बहू-बेटियोकी तरह रहना चाहिये।"

"लेकिन", विमलाने कहा, "मुझे हवाकी जरूरत है।"

सास अपने गढमे थी। दृढ़तासे बोली, "बहू ! सेहत हवासे नही, खानेसे सुधरती है। मेरे घरमे घीकी कमी नही है।"

विमला सहम गयी। यकायक उसे कुछ सूझ न पड़ा। वे अनमनी-सी रहने लगी। परिणामस्वरूप उसका स्वास्थ्य विगड चला।

वे कई बार सासके पास गयी परन्तु वे घृणाकी हँसी-हँस रह गयी। उसने कहा, "तो मुझे शहर जाने दो।"

जवाब मिला, "अभी ठहरो।"

विमलाने कई पत्र अपने पति और नन्दिताको लिखे पर उन्हे किसीका उत्तर नही मिला। उनके कवि-हृदयको ठेस लगी। विशेपकर अपने गर्भके कारण उनकी चिन्ता बहुत बढ गयी और वे विक्षिप्त-सी रहने लगी। अपराजिता तब नन्दिताके पास थी और बच्चा होनेके दिन पास आ रहे थे।

अन्तमे एक दिन एक बैरग पत्र किसी तरह नन्दिताके पास पहुँचा। पढ़कर नन्दिता काँप उठी। उसने उसी वक्त अपने पतिको बुलाकर कहा, "मैं आज ही रामगढ जाऊँगी। जीजी बहुत बीमार है।"

अचरजसे उन्होने कहा, "पर नन्दिता ! मुनीमजीका पत्र आया है, उसने लिखा है, कि वे प्रसन्न है।"

नन्दिताने पत्र उन्हे दे दिया। पढकर वे बोले, "जान पडता है, उनका मस्तिष्क बिगड गया है।"

"जी हाँ", नन्दिताने जवाब दिया, "कविके कोमल हृदयको जब

ठेस लगती है तो वह विद्रोह करनेमे असमर्थ होनेसे पागल ही हो जाता है, पर आप अभी चलिए अभी।"

रामगढ पहुँचकर जब नन्दिताने विमलाको देखा तो वह कॉप उठी। वे मात्र ककाल थी, पीली और डरावनी। आँसुओको पीकर उसने कहा, "जीजी, तुमने यह क्या कर डाला!"

विमलाने आँखे खोलकर देखा, कहा, "तुम आ गयी नन्दिता! पर अब देर हो चुकी है। मैने उसकी हत्या कर डाली।"

"नही-नही", नन्दिताने प्यारसे उसके सिरपर हाथ फेरा, "तुम ऐसे मत बोलो, जीजी! तुम ठीक हो जाओगी। परन्तु तुमने लिखा क्यो नही।"

लेकिन विमलाने नही सुना। वह यही कहती रही, "मैने उसकी हत्या कर डाली, मै चाहती तो उसे बचा सकती थी।"

नदिन्ताने लौटकर पतिसे कहा, "जीजी पागल हो चली है, शीघ्र ही शहर जाकर एक डाक्टर और नर्सको ले आइए।"

सास पास बैठी थी, बोली, "अरे नही। उसके बच्चा होनेवाला है। दिन पास है। ऐसा हो ही जाता है, खासकर जब कोई महात्मा पैदा होता है।"

नदिन्ताने तीव्रतासे कहा, "उनके हृदयको ठेस लगी है। उन्हे डाक्टरकी जरूरत है।"

सास बोली, "पर इस घरमे आजतक डाक्टर और नर्स नही आये है।"

"नही आये है तो अब आ जायेगे।"

और वह चली गयी परन्तु विमला बहुत दूर पहुँच चुकी थी। अपराजिताकी पुकार भी उन्होने नही सुनी और डाक्टरके आनेसे पहले ही वह भोली कवि-आत्मा इस दुनियाको छोडकर चली गयी। उसने उसी रात एक मृत शिशुको जन्म दिया। वह अति सुन्दर था और उसका सिर बहुत बडा था परन्तु उसके हृदयका स्पन्दन बन्द था।

क्षण भरके लिए जब उसे होश आया, तब अपने पतिसे उसने इतना ही

कहा, "अपराध मेरा था। मै चाहती तो उसे बचा सकती थी परन्तु बच नही सकी। इसलिए मुझे जीनेका अधिकार नही है। मै जा रही हूँ।'

× × ×

२१-६-४।

प्यारे भइया !

कल मन इतना उमडा कि आगे लिखा ही नही जा सका। नन्दिताने जब मुझे यह कथा सुनायी थी तब भी मै रो-रो पडी थी। उसने कहा था, "अमला। नारी बहुत रो चुकी। रो-रोकर उसने आँचलके दूधको भी पानी कर डाला है। वह भूल गयी है, पुरुषका सहारा लेनेवाली नारी पुरुषका निर्माण भी करती है। उसने मुझे विमलाकी कवितायें भी दी है कि आप उन्हे छपवानेका प्रबन्ध कर दे। दुनिया देखे तो अन्धकारकी छातीके नीचे प्रकाशके कितने पुज दबे पडे है।

भइया ! कहानी कहाँसे कहाँ पहुँच गयी। इसको कोई क्या लिखे ! यह तो मरकर देखनेका सौदा है।

शेष सब ठीक है। अगले पत्रमे विशेष हाल लिखूँगी। सबको नमस्कार और प्यार।

तुम्हारी,
अमला

पुनश्च :—
विमलाका पत्र भेज रही हूँ।

अमला

विमलाका पत्र

प्यारी नन्दिता,

आखिर मैने उसकी हत्या कर डाली। मैने अपने ही हाथों संसारके भावी नागरिकका, जो विश्वका महान् पुरुष बननेवाला था, गला घोट दिया।

उसे मुक्त वायुकी आवश्यकता थी, मै उसे घी पिलाती थी। उसे

कठोर कर्मकी जरूरत थी, मैं उसे पडी-पडी लोरियाँ सुनाती थी। उसने मुझसे बार-बार कहा—माँ, मैं प्रकृतिका साहचर्य चाहता हूँ, राजसी भोग नही। मुझे मुक्त सूर्यके दर्शन करने दो, मुझे सरिताकी लहरोसे खेलने दो। माँ, मुझे तुम पर्वतोकी उन चोटियोपर ले चलो जहाँसे मुक्त झरने झरते है, जहाँ प्रकृति और पुरुष, निर्विघ्न और निर्द्वन्द्व, गलबाँही डाले खेल खेलते है, पर मैं उसकी इच्छा पूरी नही कर सकी। क्योकि इनकी कुल-रीति किसी नारीको प्रकृतिसे सम्बन्ध स्थापित करनेकी आज्ञा नही देती।

मैं चुप हो गयी, यही मेरा पाप था। मैंने अपने विचारोको आप झुठलाया। मैं चाहती तो रीतिको तोड सकती थी। रीति तो शाश्वत नही होती। वह तो नित नयी बनती है। बननी ही चाहिए। मैंने क्या क्या सोचा था। मै आदि शक्ति हूँ। मैंने ससार बनाया है। मै फिर एक ऐसा ससार बनाऊँगी जिसमे न परतन्त्रता होगी, न निर्धनता और न निरक्षरता पर .

पर क्या नन्दिता, मैंने अपने पैरोपर आप कुल्हाडी चलायी। अपने ससारको आप नष्ट कर दिया। मै भूल गयी, मै निर्माता हूँ। मुझे अब जीनेका अधिकार नही है। मै नही चाहती, मेरा अशक्त बच्चा कलको यो कहे—अपनी माँके पापोका फल मुझे भोगना पड रहा है। इसलिए उसका मरना अच्छा है। मैं उसका गला घोट रही हूँ और अपना भी। वह मुझे पुकार-पुकारकर कह रहा है—माँ! मुझे पगु जीवन नही चाहिये। माँ, मुझे दुर्बल हृदय नही चाहिये!

अपराजिता तुम्हारे पास है। तुम्ही रखना। वह एक दिन महान् बनेगी, यह मत भूलना।

तुम्हारी,
विमला

१९४७]

डायन

सूर्य मध्यम रेखाको पार करके पश्चिमकी ओर मुड चला था। मैं पढनेसे थककर किताबमे मुँह गडाये वाहर भागनेकी कोई योजना बना रहा था कि मेरी ममेरी वहन सत्या हाँफती हुई अन्दर आई और एक साँसमे मामीसे बोली, "अम्मा, अम्मा! डायन!!"

यह कहते समय वह थर-थर काँप रही थी और उसका रक्तिम मुख एकदम श्वेत हो आया था। तव वह लगभग मामीके ऊपर गिर ही पडी थी। मामी हाथका काम छोडकर एक झटकेसे उठी और दरवाजेकी ओर दौडती हुई बोली, "शरत कहाँ है?"

सत्याने कहा, "अम्मा! उसने डायनको पत्थर फेंककर मारा, गाली दी और..."

और इसके आगे सुननेकी शक्ति अव मामीमे नही थी। 'हाय' कहकर उन्होने दीवार थाम ली पर दीवारने उन्हे नही थामा। वे सज्ञाहीन पागल-सी आगे वढी पर जैसे ब्रेक लग गया। देखा—सामने शरत वदहवास दौड़ा चला आ रहा है और उसके पीछे दौड रही है गफूरन!

मामीकी आँखोमे तिरमिरारे उठे, तिरमिरारे गिरे, अँधेरा तेजीसे वढा। फिर धीरे-धीरे कानोने सुना, "देख री गुप्ताकी लुगाई! तेरे छोरेने मुझे गाली दी है। पत्थर फेंककर मारा है। मैं उसका कलेजा खाऊँगी। मै उसकी वोटी-वोटी नोचूंगी। छिनालका! मैं आज उसे छोडूँगी नही। तुझे तभी पता लगेगा जव उसका कलेजा निकलेगा।"

इन वाक्योका कोई अन्त नही था, कोई मर्यादा नही थी। मामी पसीना-पसीना धडकते दिलमे कभी गफूरनको देखती, कभी शरतको। वीच-वीचमे कुछ फुसफुसाती पर शरत था कि ज्यूं उसने आकर माँकी टाँगोमे

सिर दिया तो निकलता ही नही था और गलीमे जैसे सन्नाटा छा गया था, पर देख उसे सब रहे थे। कुछ किवाड बन्द करके उसकी दराजोमे झाँक रहे थे। कुछ छज्जोके पीछेसे ऐसे सिर उठाये थे जैसे जगलके शेरको आते देखकर पेडके पीछे छिपा एकाकी यात्री करता है। कुछ साहसी खिडकियोमे चिक डालकर, जनवरीकी वर्षाके वाद कॉपनेवाले पथिककी तरह, थरथरा रहे थे।

और गफूरन वोले चली जा रही थी, वोले चली जा रही थी। उसकी उमर क्या थी, कोई ठीक-ठीक नही जानता था। उसके बाल न केवल सन-से सफेद थे वल्कि सख्यामे भी गिने जाने योग्य थे। दॉत न जाने कवके विदा ले चुके थे। कमर झुक गई थी। खाल माँससे विद्रोह करके यहॉ वहॉ लटक आई थी। कपडे भी उसके पेवन्दोसे भरे पडे थे। पैरोसे चिपटा हुआ काला सुथना, वैसा ही कुरता और सिरपर ओढनी। वह कुरूप थी पर उसकी ऑखोमे रोशनी थी, उस रोशनीमे क्रूरता चमकती थी। पर जब कभी वह अपनी लाठीको कोनेमे टिकाकर और चूडियोका बोझ उतारकर किसीकी देहरीपर रखती थी, तो जैसे अचानक ही वह क्रूरता मुस्कानमे पलट जाती थी और वह पोपले मुँहसे मोलतोल करती हुई किसीकी कोमल कलाइयोमे, सधे हाथोसे रग-विरगी चूडियॉ चढाने लगती थी।

पर आज तो वह वोले चले जा रही थी, वोले चले जा रही थी और उस बोलनेमे हर वाक्यके वाद सदाकी तरह कलेजा खानेकी वात दोहराती थी और मामी थी कि वदहवास-सी कभी शरतको टटोलती, कभी गफूरन-को देखती जो वार-वार लकडीको वजा रही थी और वार-वार आवेगमे कमरको सीधा करनेका असफल प्रयत्न करती थी। जैसे ऑधीके झोकेसे वृक्षकी टहनियॉ तन-तनकर झुक जाती है ऐसे ही वह भी झुक जाती थी आर आस-पासके लोग साँस रोके देख रहे थे, सोच रहे थे—अब क्या होगा? अब क्या होगा?

"हाय राम, गुप्ताका छोरा गया। गफूरन अव उसका कलेजा खा लेगी।"

"शामको देखना छोरा हँसता-हँसता एकदम तडपकर जान दे देगा।"

"हाय, हाय काकी, इस डायनको मौत नही आती।"

"डायन कभी नही मरती, कई सौ वर्ष तक नही मरती।"

वात करनेवाली युवती आगे कुछ पूछती कि सहसा उसकी दृष्टि सामने गई। देखा कि एक झटकेसे मामीने शरतको अपनी टाँगोमेंसे खीचा और घसीटती हुई वहाँ ले आई जहाँसे गफूरन ज़हरीले वाण फेंक रही थी। यहाँ आकर उसका भय जैसे तिरोहित हो गया। दृढ पर अद्भुत रूपसे विनम्र स्वरमे वह वोली, "चाची, वेटा तुम्हारा यह रहा। मुझे क्या मालूम, कलेजा खाओ या मगज खाओ।"

और कहकर वे अपने शब्दोकी प्रतिक्रिया देखनेको रुकी नही। सीधी अन्दर आई और पाँच मिनट वाद लौटी, तो हाथोमे एक टोकरी थामे हुई थी। वह ऊपर तक गेहुँओसे भरी थी। उसपर आलू थे, गुड था, घी था और भी वहुत कुछ था। चुपचाप टोकरीको वही रख वह फिर मुडी, पर दूसरे ही क्षण अपने हाथ आगे करके वोली, "और हाँ, मुझे चूडी तो पहना दो, हाथ नगे है।"

देखनेवालोने दाँतो तले अँगुली दावी। अभी जव वह किवाड थामे खड़ी थी, तो उसके हाथोमे दस-दस सुनहरी चूडियाँ थी। क्षण भरमे वे कहाँ गई? इसके वाद वहाँ कई क्षण सन्नाटा रहा। वह सन्नाटा जो हरेकके प्राणोको झकझोर रहा था, पर आग धीरे-धीरे ठण्डी पडती जा रही थी। उसमे तपस थी पर शोले नही थे। गफूरन उसी तेजीमे आगे वढी पर फिर न जाने क्या हुआ, वह मामीकी ओर मुडी। वडवडाते हुए कमरके वोझको देहरीपर रखा और तीखी आवाजमे कहा, "औलादको सलीका सिखाना चाहिये। अवातवा वकना अच्छा नही।"

मामीने जवाव दिया, "चाची! पूछो न आजकलकी औलाद ."

"औलाद तो है पर फिर भी   "

"ओय जी बहुत डाटू हूँ, काटू हूँ। एक वार तुम धमका दो न। मै कुछ कहूँ तो वात। तुम्हारा ही तो है। तुम्हारे आशीर्वादसे सात-सात बेटियोपर दिखा है।"

"हाय-हाय", गफूरन अब हाथ-मे-हाथ लिये चूडी ढूँढ रही थी, "जिये जागे मै सदके जाऊँ। खुदाने दिखाया है तो जिलायेगा भी।"

और तबतक पासा पलट चुका था। देखनेवाली सोच रही थी कि यह क्या हुआ और जब वह चली गई, तो उन्होने सवाल-पर-सवाल करके मामीका दिमाग चाट लिया, "क्यो री गुप्ताकी वहू, क्या कहा उसने ? वडी मीठी-मीठी वाते करे थी।"

"अरी मीठी-मीठी वाते करके ही तो वह कलेजा काढे है, देख लेना।"

शब्द अभी कहनेवालीके मुखमे ही थे कि भीडमे 'हाय-हाय'के अनेक शब्द उठे, "नही, नही, भगवान् सब कुछ देखे है। ऐसा अन्याय नही होगा।"

"नही, नही। राम न करे, एक ही तो बेटा है।"

पर कहनेवाली और भी आगे आ गई और हाथ मटकाकर वोली, "दर्द मुझे भी है। तभी कहूँ हूँ। चुडैलका चौडा पकडकर जबतक लात-घूँसे नही लगाये जायँगे तबतक उसका क्या भरोसा ? मै तो उसे जिन्दा अलावमे फेक दूँ पर वह वात है . "

वात जो भी हो पर उसने सब उपस्थितोके मनपर आतक पैदा कर दिया। बूढियोने गम्भीरतासे सिर हिलाये, प्रौढाएँ जो थी उन्होने अपने वच्चोको तेजीसे जकड लिया। युवतियोके दिल, विशेषकर माँ बननेवाली युवतियोके दिल धडकने लगे। वे सोच न सकी क्या करे, क्या न करें। पर मामी थी कि शान्त भावसे खडी थी। आँखोमे उसकी आँसू तो थे पर आज उसे मामाके वे शब्द शक्ति दे रहे थे जो वे वार-वार कहा करते थे कि आदमी भी कही आदमीका मास खाता है, जैसे मछली मछलीको,

छपकलीको, या नागन अपने बच्चोको खाती है। आदमी जानवर नही है, वह ज्ञानी है, धर्मको जानता है। कभी-कभी मामा हँसकर कहा करते थे, "वैसे यह दूसरी बात है कि धनी लोग, जायदादके मालिक, महकमेके अफसर या धर्मगुरु—ये लोग अपने पजेमे फँसे इन्सानको खा जाते है पर वे भी न उसका मास नोचते है, न खून पीते है और न मरने देते है। वे हिसक नही. अहिसक है।"

आजसे पहले वह कभी इन शब्दोके अर्थ नहीं समझ सकी थी, पर आज ये ही शब्द उसकी शक्ति बन गये थे, ईश्वर बन गये थे। उसने कहा, "मै तो जी, कुछ करती नही जो होगा हो जायगा।"

इस वाक्यने भीड़की आशाओपर पानी फेर दिया। किसीने मुँह बिचकाया, किसीने उपेक्षासे भर्त्सना की पर मामीका समर्थन करनेवाली उनमे एक भी नही थी। उन्हे यही विश्वास था कि गुप्ताके छोरेपर यह रात नही गुजर सकती। या तो वह सवेरे अपनी खाटपर मरा मिलेगा या रातमे चीख-चीखकर जान दे देगा। उन्हे विश्वास था कि गफूरन रातको जरूर मत्र पढेगी। उसके घरमे एक कोठरी है, उसीमे बैठकर वह जादू-टोना करती है। किसी खूबसूरत बच्चेको देखा नही कि उसकी राल गिरी नही, फिर घर जाकर वह उस कोठरीमे बन्द हो जाती है जहाँ तरह-तरहके जादू करनेके यन्त्र है। तसवीरे, मिट्टीके वर्तन, मूर्तियाँ, चाकू, छुरे, घोडेकी तरनाल, वाल और न जाने क्या-क्या! कहनेवाले कहते है कि पहले वह मिट्टीकी मूर्तिको खूब सजाती है, प्यार करती है फिर मत्र पढती है और आखिर छुरा लेकर उसका कलेजा निकाल लेती है। उसे वह हथेलीपर रखकर खूब हँसती है, नाचती है, गाती है और बादमे खा जाती है। उस समय असली बच्चा जहाँ भी होता है, पहले तो खूब हँसता है, आप-ही-आप हँसे जाता है। जब प्यार खत्म हो जाता है, तो सहसा वह काँपने लगता, आवाज़ बन्द हो जाती और तड़प उठता और तबतक तड़पता रहता जबतक गफूरन कलेजेको निगल नही जाती। निगलते

ही वालक छटपटाना छोडकर एकदम शान्त हो जाता है। विल्कुल उसी तरह जिस तरह गफूरनके हाथकी मिट्टीकी मूर्ति !

लोग उसके वारेमे तरह-तरहकी वाते करते थे, उनमे ऐसे लोगोकी कमी नही थी जिन्होने ये सव वात अपनी आँखोसे न देखी हो। स्त्री-पुरुष, वूढे-युवक, सभीको वूढी गफूरनके कलेजा खानेकी शक्तिपर पूरा विश्वास था। कछ तो उनमे ऐसे भी थे जिन्होने उसके पेटसे कलेजा उगलवाया भी था। वे कसम खा-खाकर कहते थे कि उन्होने गफूरनसे कलेजा उगलवाया है।

गुलाव एक लडका था, सुनारोका। सोनेके ऐसा उसका रग, गुलाव ऐसा खिला हुआ। तीन वर्षकी आयुमे ऐसी वाते करता जैसे प्रोफेसरका लडका सातवेंमे करे। जो देखता उसपर निगाह टिक जाती, वस देखता रहता, देखता रहता। सवके दिलमे प्यार उमडता और प्यारकी सीमा होती यह चेतावनी, 'अरी गुलावकी माँ ! सोने-सा वेटा है तेरा, गफूरनसे बचाना।'

गफूरन जैसे एक भय थी, एक महामारी थी, एक मौत थी। एक मील दूर होती तभी हलकारे दौड पडते, वम वर्षाके खतरेका घण्टा वज उठता और तव जो जहाँ होता, जैसे होता, वैसे ही दौड पडता और वच्चोको उठा-उठाकर उसकी नजरोसे दूर कर देता। तव घरोके किवाड वन्द हो जाते, खिडकियोपर चिकें पड जाती। चोटी करती युवतियाँ तेल-कघा वही छोडकर भागती। दाल-चावल चुगती प्रौढाये या वाते करती वृद्धाये सव युवतियोकी-सी तेजीसे उठती और पुकारती, 'अरी रामू कहाँ है', 'अरी गोपाल कहाँ चला गया', 'हाय-हाय कै वार कहा छोरेको वाहर मत जाने दिया कर' 'अरी क्या दालमे गडी है, लल्लूको देख', 'वहू, ओ वहू, अरी गफूरन आ रही है, हाय-हाय. . .' 'अरी मैं तेरे से पूछू हूँ कि नन्दू वाहर गया क्यो ?' 'ये राम मारे छोरे, हाय-हाय आजकलके वच्चे. . .।'

और यह घबराये हुए वाक्य, अधूरे वाक्य, भय और क्रोध और झुंझलाहटसे भरे वाक्य कभी पूरे न होते। लेकिन उनका अर्थ समझनेको माताओंको कभी सिर न खपाना पडता। एक बेचैनी, एक तडप उन्हे सब कुछ समझा देती और जो उस दिन न समझ पाता वह ज़िन्दगी भर पछताता। गुलाबकी माँ उन्ही अभागिनोमे-से थी। उसने गफूरनके आनेपर खतरेकी घंटी नही सुनी। गुलाब वही गलीमे खेलता रहा। यही नही उसने गफूरनकी लकडी पकडकर प्यारसे कहा, "दादी।"

गफूरन रुकी, उसकी आँखें चमकी, लटकी हुई त्वचाकी कठोरता जैसे स्निग्ध तरलतामें पिघल गई। काँपते हाथोमे उसने बच्चेका मुँह अपने दोनो हाथोमे लिया और लडखडाते स्वरमे बोली, "मेरे बच्चे।"

फिर स्रोतेकी तरह उसकी आँखोमे आँसू छलछला आये। फुसफुसाने लगी, "कैसा प्यारा बच्चा है! कैसा प्यारा!"

गुलाबकी माँ, सुनारोके घरकी सोने-सी वहू जब घरसे दौडती हुई निकली तो यह सब हो चुका था। वह न आगे बढ सकी, न पीछे हट सकी, सकतेमे आकर बुत बन गई। उसने दीवार पकड़ रखी थी। उसकी आँखे फैल गई, मुँह खुल गया, भय और आतंकने उसके दिलको दबोच लिया कि ...कि गफूरनने बच्चेको ऊपर उठाया, चूमा, छातीसे लगाया फिर नीचे उतारकर अपनी चूडियोकी पोटली खोली। उसमे जो सबसे सुन्दर कडा था वह उसे दिया। बच्चेने कड़ा लेते ही किलकारी मारी और दौड़ता हुआ सीधे माँके पास आकर बोला, 'अम्मा, अम्मा, कड़ा, दादीने कडा दिया है।"

और फिर हँसी, सरिता-सी छलछलाती हँसी। गफूरनने उसे सुना, नाच उठी। सुनारोकी सोने-सी बहूने सुना, काँप उठी। आँसू उमड आये। गफूरनके आगे बढते ही उसने गुलाबको खीचकर गोदमे भर लिया और लगी रोने। उसे विश्वास हो गया था कि अब गुलाबकी खैर नही। और उसे ही नही तमाम मोहल्लेवालोको यही विश्वास था। कहनेवाले कहते

है कि गुलाव उस दिन उस कडेको लेकर खूब खेला। साँझको खूब हँसा और रात पडते ही वह एकाएक काँपने लगा, फिर तडपा, देरतक तडपा जैसे पानीसे बाहर आकर मछली तडपती है। सुनारोके घरमे कोहराम मच गया। नारियोका रुदन कलेजा चीरने लगा। रातके उस सन्नाटेमे वह आवाज गली और गलीसे दूर कही-की-कही पहुँच गई।

"हाय राम!" एक वृद्धाने कहा, "जिसको वह चुडैल प्यार करती है, उसे डसकर छोडती है।"

"बडा जहरीला प्यार है उसका।"

"मौत भी नही आती उसे।"

"जबतक यह अपना मन्त्र किसीको नही सिखा देती तबतक यह नही मर सकती।"

इसी समय अचानक पाँच-छ कडियल जवान सुनारोके घरसे निकले और सीधे गफूरनके घर पहुँचे। वहाँ आस-पास उनके कई दोस्त थे। उनकी मददसे उसे जगाया और पैर पकडकर प्रार्थना की कि वह कुछ भी ले ले पर गुलावका कलेजा थूक दे। गफूरन थी कि अनजान बनकर बोली, "हाय, हाय बेटा! क्या कहो हो? किसने बहका दिया।"

"ना, ना चाची सौ ले ले। पाँच सौ ले ले पर गुलावको बख्श दे।"

"नही, बेटा नही।"

"नही, चाची नही।"

"बेटा! मै सब कहूँ, क्यो तोहमत लगाओ हो। मै क्या जानूँ जादू-टोना। मै तो गरीब मनिहारिन हू।"

सुनारोके घरवालोने रुपयोका ढेर लगा दिया पर बुढिया टस-से-मस नही हुई—उलटा जब वह बहुत हठ करने लगे, तो वह उबल पडी और लगी गालियाँ देने। इसपर सुनारोके बेटो और दोस्तोने उसे बाँधकर वह मार लगाई, वह मार लगाई कि आखिर गफूरनने हाथ जोड़कर कहा, "मै थूके देती हूँ। मुझे छोड दो. मै अभी थकती हूँ।"

"थूक !"

"छोडो, थूकती हूँ ।"

कहनेवाले कहते है—गफरनने इधर थूका और उधर गुलाब ऐसे उठ खडा हुआ जैसे सोकर उठा हो । सुनारोके बेटे जब घर आये तो वह दूध माँग रहा था । कह रहा था कि उसके पेटमे बडा दर्द है । पूछा, "अब भी है ?"

"हाँ ।"

और फिर उसे दस्त हुआ और उसकी तबीयत काफी सुधर गई । अगर्चे उसे कई दिन तक बुखार रहा पर फिर बेहोशी नही हुई । और कहनेवाले इसी तरहकी बाते कहते थे और सुननेवाले उनपर विश्वास करते थे । अगर्चे उन्होने देखा कुछ नही था पर ईश्वरको भी किसने देखा है, फिर भी उसे लगभग सभी मानते है ।

और इन्ही न खत्म होनेवाली चर्चाओके कारण शरतको लेकर मेरी बेचैनी बढ गई । वह रात जैसे मेरे लिए परीक्षाकी रात हो गई । शरत हँसता तो मेरा माथा ठनकता, मुझे मौत आती दिखाई देती, पर शरत था कि उसी तरह खेलता-कूदता सो गया । मुझे याद है कि मामी बार-बार चौंक पडती । जरा कही खडका होता, वह पुकार उठती, "शरत !" मै तब मामीको देखकर एकदम कहता, "क्या है, मामी ? शरतको क्या हुआ ?"

"कुछ नही, सो रहा है ।"

मामा उस दिन कही दौरेपर थे । इसलिए वह रात हमारे लिए और भी भयानक हो उठी । यूँ ऊपरसे दोनो शान्त थे । सब काम रोज़-की भाँति किये । खाना, पीना, दूध जमाना, फिर खुरचन खाना, फिर लैम्प लेकर सब दरवाज़े देख लेना और फिर सो जाना । हाँ, उस दिन दरवाज़े ज़रा गहराईसे देखे गये और भूलसे लैम्प जलता रह गया । मामी कहती थी कि मै उस रात कई बार चौंका और पुकारा—

"शरत।" मुझे याद है कि मामी रात भर फुसफुसाई थी—"शरत रे, ओ शरत।"

पर हुआ यह कि सदाकी भाँति शरत सोकर उठा और खेलमे लग गया। दिन चढे तक खेलता रहा। पडोसियोने उसे देखा, जीभ काटी और रात होने तक उनमे यह चर्चा फैल गई कि गफूरन जिसपर गुस्सा करती है उसका कलेजा नही खाती।

और फिर इसके समर्थनमे कई कहानियाँ सुनी गई और सदाकी भाँति उनके कहनेवालोने सब कुछ अपनी आँखोसे देखा था।

लेकिन इधर गफूरनमे एक परिवर्तन दिखाई दे रहा था। कभी-कभी उसके साथ एक लडकी आने लगी थी। लडकी खूबसूरत थी, उसकी खाल मुलायम थी। वह शर्मीली भी थी। जब-जब वह आती, गफूरन सबसे उसका परिचय कराती और जब वह चली जाती तो प्रौढाएँ ठोडीपर उँगली रखकर बडी हैरानीसे कहती, "दूसरी डायन तैयार हो रही है।"

"क्या?"

"हाँ, अब उसका बुलावा आ गया। इसे मत्र पढा देगी और फिर यह सलौनी छोरी सलौने छोरोके कलेजे खाया करेगी।"

"हाय, हाय! इसे कोई अलग क्यो नही कर देता।"

"जिसपर गफूरन रीझ जाये उसे कोई अलग नही कर सकता।"

और उस लडकीको वह बानो कहती थी। वैसे उसका पूरा नाम हुस्नबानो था। अगर्चे शुरूमे वह एक मरघिल्ले खाजसे बीमार पिल्लेकी तरह थी, पर देखते-देखते उसने जो रग छाँटा तो हुस्न उससे दूर न रहा। सुना था कि गफूरन उसे कही दूर-दराजके एक गाँवसे खरीद लाई थी। उसकी जातका किसीको पता नही था। अपने माँ-बापकी शायद वह दसवी औलाद थी, जो सबकी सब लडकियाँ ही थी।

कुछ दिन बाद बानो रोज आने लगी। गफूरन हर दरवाजेपर लाठी टेककर हाँफती-हाँफती घरवालीको पुकारती। उसके आनेपर

कुछ देर, वाक्य उसके कठमे अटके रहते फिर कहती, "अब तो वहू! बस किनारा आ लगा है। अब यह वानो आया करेगी।" फिर मुडकर वानोसे कहती, "वानो! ये वड़ी मेहरवान है। समझी, मैं तो जवानकी कडवी थी फिर भी मजाल जो किसीने बुरा माना हो। पर तू सबसे मुहब्बतसे वोलना-वरतना। कडवी जवान वडी खोटी है। भला री! बच्चोसे खास तौरसे मुहब्बत करना। उन्हे प्यार करना मैं ..मैं...।"

यहाँ आकर उसका कण्ठ फिर रुकने लगता और वह एक क्षण वाद एकदम कडककर कहती, "सलाम वहू। अब यह आयेगी बानो . ।"

और वह आगे वढ जाती, लजीले नयनोवाली वानो हाथ उठाकर सलाम करती ओर एक पाउडर ऐसी हल्कीसी मुस्कान उसके मुखपर उभर आती। इधर एक झटकेसे किवाड बन्द करती हुई वहू कहती, "हूँ, तो अब यह खूबसूरत नागन बच्चोको डसा करेगी।"

और इस घरसे उस घर, इस पडौससे उस पडोस, इस गलीसे उस गली उडती हुई यह कहानी गफूरनके पहुँचनेके पहले समूचे वातावरणमें रम गई, "अरी वहू सुना! दूसरी डायन तैयार हो गई।"

"बडी मिठबोली और खूबसूरत है।"

"अपनी जवानीमे गफूरन भी तो कातिल रही थी। हाँ, जवानकी कुछ कडवी थी।"

"अरी ओ गोमती! वानोको देखा तूने। आँखेतक नही उठाती।" अजी मेरी दादस कहवे थी कि गफूरन भी पहले ऐसी थी जरा जवान की कडवी थी।"

"दादी जी, दादीजी! तुमने गफूरनको देखा। क्या वह ऐसी ही खूवसूरत थी?"

"पूरी चाँदका टुकडा थी, पर जवान उसकी शुरूसे कडवी रही। वात-वातमे कहा करे थी—'कलेजा खा लूँगी।' अपने खसम तकको नही छोडा।"

"पर दादीजी! उसे मन्त्र सिखाया किसने?"

"क्या मालूम वेटी! कोई जादूगर आया बनावे था। पडौसमे बसा था। उसीसे साँठ-गाँठ हो गई। मत्र सीखकर सबसे पहले उसने अपने खसमका कलेजा खाया।"

"सच!"

"हॉ, पर वह इसे भारी पडा। कहनेवाले कहे थें कि वहुत दिन बीमार पडी रही, फिर यहॉ भाग आई। सुना है जादूगर उससे कह गया था कि अवसे वडोको न छेडना।"

"ओ हो, तभी वच्चोको डसे है।"

और इस प्रकार घर-घर और गली-मोहल्लेमे उसकी चर्चा होती और वह भी अब जब कभी आती तो ललचाई ऑखोसे सूनी सडकोको देखती। कोई वहू मिलती तो उससे पूछती, "अरी वहू, तेरा वेटा तो अच्छा है।"

"जी जी थारी मेहरबानी है।"

गफूरन और भी सदय होती, "सब उसकी मेहरबानी है। वह सबको देता है।" और फिर वह कहना चाहती, "अरी दिखा तो कहॉ है तेरा वेटा।" पर ये शब्द उसके कलेजेसे उठकर गलेमे खो जाते। वाहर उनकी ध्वनितक न गूँजती। वस ऑखोमे ऑसू भरे वह देरतक वुत जैसी वही टिकी रहती। दिलके तूफानको दिलमे रोके रखती, रोके रखती।

लेकिन वुढापा तो सयमका दुश्मन है, वह निश्चयका भी दुश्मन है। वह तो वस वहता रहता है। तो गली-मुहल्लेवालोको अब कुछ यू अनुभव होने लगा जैसे गफूरन अब वूढी हो गई है, क्योकि न तो किसी वच्चेके तडपनेकी खबर सुनाई पडती है न मरनेकी।

"सुनती कहाँसे। अब गफूरन थोडे ही खाती है।"

"हॉ, हॉ री, अब तो वानो है।"

"और उसके कलेजा खानेका तरीका भी और होगा।"

"हाँ, कौन जाने उसके खाये वालक कैसे मरे है।"

लेकिन, इससे पहले वे नये तरीकेकी खोज कर सकती, भीडी गलीके नुक्कड़पर रहनेवाले पसारियोका तीन सालका बेटा गायब हो गया। दोपहर-तक उसे सबने खेलते देखा पर दोपहरको जब उसका चाचा खाना खाने घर आया, तो वह नही मिला। बस देखते-देखते घर भरमे कोहराम मच गया। सब लोग अत्यंत विकलतासे तेज-तेज कदम इधर-उधर भागने लगे। माँ, चाचियाँ घर-घर दौडने लगी। सुनारोके घर, हलवाइयोके घर, मुशी बिसाती, रामजी सरावगी, द्रोपदीकी मौसी, वकील साहब, पासकी गलीके ब्राह्मणोके घर, फिर गुप्ता बाबूका घर जहाँ शामको सब बच्चे इकट्ठे होते थे, यहाँतक चौकके नालबन्द हाजी खुदाबक्सका घर, सभी जगह देखी गई। आँखोमे आँसू भरे, अटकती भाषामे, लरजते स्वरमे सब कही उसे पुकारा गया। देवीकी मानता मानी, हनुमानका प्रसाद बोला शंकरका व्रत लिया, पर साँझ पडनेतक भी किशोर घर न लौटा। किशोर जो गोरा चिट्टा था, किशोर जिसके बाल पतले थे सुनहरे थे, किशोर जो दिन भर गलियोमे हर किसीसे मीठी-मीठी बाते किया करता था।

उस बच्चेके खो जानेकी खबर पाकर मुझे भी दु ख हुआ। बहुत बार वह मेरे पास आकर बैठता था। इसीलिए हम दोनोमे एक लगाव-सा हो गया था। इसीलिए किताबोको छोडकर मैं भी ढूढनेवालोके साथ हो लिया पर किशोरका पता नही लगा। तभी सहसा खबर उडी, "हो-न-हो किशोरको डायनने उडाया है।"

"पर. ..पर वह तो मरनेको पडी है।"

"अरे वह नही। नई डायनने।"

"बानोने ?"

"हाँ, यह उसका नया तरीका है, बच्चोसे वह बडा हेल मेल बढाने लगी है।"

बस नई उमरके चार जवान तेजीसे उधर लपके जिधर गफूरनका घर था। कौतूहलके कारण मैं भी उनके साथ था। दिल्ली दरवाजेके

बाहर नहरका पुल पार करके, जब हम उस तग और बदबूदार बस्तीमे पहुँचे तो चारो ओर सन्नाटा छाया हुआ था। लेकिन उस ओर तनिक भी ध्यान न देकर हम गफूरनके कच्चे मकानमे घुसे चले गये। बडेसे चौककी कीचडमे जो मुरगियाँ खेल रही थी, वे तेजीसे फडफडाई और कोठडीसे बाहर आती हुई बानो सहमकर अन्दर घुस गई। हमने सुना, काँपती हुई तेज आवाजमे उसने कहा, "वे आ गये, वे किशोरको लेने आ गये। मै कबसे कह रही थी।"

वह अपना वाक्य पूरा कर पाती इससे पूर्व हम अन्दर पहुँच चुके थे। देखा गफूरन एक टूटी खाटपर पडी है। गफूरन जो अब खोखली हड्डियोका टेढा-मेढा पजर-मात्र है, पुरानी लाश जैसी डरावनी और विकृत। और बानो खडी है। बानो जो कीचडका कमल है। जो पीली पड रही है और काँप रही है, काँपे जा रही है। और किशोर उसकी उगली पकडे है। किशोर जो हँस रहा है, जिसने एक हाथसे झोलीको सभाल रखा है।

कहनेमे देर लगती है। किशोरके काकाने बाजकी तरह झपटकर किशोरको गोदीमे उठा लिया, ऐसे कि बानो धक्का खाकर जमीनपर गिरी, सिर तेजीसे खाटके पायेसे टकराया। किशोरकी झोली खुल गई और खन-खनाकर ढेर सारे रुपये, खिलौने, काँचके कडे चारो तरफ बानोपर, गफूरन-पर, हमारे पैरोपर, फर्शपर बिखर गये। किशोर रो पडा, जिसे सुनकर गफूरन तिलमिलाई। दोनो हाथ आगे बढाये, तेजीसे सिर हिलाया, ओठ फडके।

पर वह कुछ कह न सकी और उसे मारनेको जैसे ही एक युवकने हाथ उठाया वैसे ही वह सहमकर पीछे हट गया और फिर भागा हुआ बाहर चला गया। लेकिन पुलिस आई तबतक गफूरन राही मुल्के अदम हो चुकी थी और बानोने जो बयान दिया उसपर कोई विश्वास करनेको तैयार नही। उसने रोते-रोते अटकते-अटकते कहा था .

"इधर कई दिनसे काकीकी हालत खराब थी। उसने बाहर जाना

छोड़ दिया था। मुझे भी नही जाने देती थी। कहती थी मेरे पास बैठी रह। यही नहीं, कभी कहती बच्चोको बुला ला, छोटे बच्चोको, बहुत सारे बच्चे जो सारे घरमे भर जाय, शोर मचायँ और फिर कहती—'बानो! ले मेरे सब रुपये उनमे बाँट दे और ये खिलौने, ये काँचके कडे सब बच्चोको दे दे। काकीने बहुत सारे खिलौने और कडे इकट्ठे कर रखे है। पहले तो मै डर गई। कुछ न कर सकी, पर जब काकीने बहुत कहा, वह मुझसे बहुत प्यार करती थी और उसकी यह हालत मुझसे न देखी गई तो, तो मै आज हिम्मत करके दोपहरको किशोरको बुला लाई। वह बाजारमे खेल रहा था और मुझसे खूब हिला हुआ था। उसे पाकर काकी बहुत-बहुत खुश हुई इतनी खुश कि जैसे जी उठेगी। उसे बहुत प्यार किया। उसके आगे खिलौनो, कडो और रुपयोका ढेर लगा दिया। पर मै डर रही थी कि कही ढूढ न पडे। इसीलिए कुछ देर बाद मैने उसे वापस बाजारमे छोड आनेको कहा पर काकी—'जरा रुको, जरा रुको' कहती रही और आखिर ये लोग आ गये और और'

इस बयानपर किसीने भी विश्वास नही किया, पुलिसने भी नही। वह उसे अपने साथ ले गई पर न जाने क्यो मुझे ऐसा लगता रहा जैसे बानो झूठ नही बोल रही थी, बानो बिलकुल ठीक कह रही थी!

और मै आज भी कहता हूँ कि वह बराबर सच बोल रही थी।

१९५२]